सूक्तिगङ्गाधर

(हिन्दी-दोहानुवाद-सहित)

सम्माननीय
श्री पं० हरिमोहन मालवीय जी
को
सस्नेह
चं० प्र० शुक्ल
३०/३/८३

सम्पादक एवं अनुवादक

डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

अस्मिता प्रकाशन

इलाहाबाद

वात्सल्य, विश्वास एवं विवेक के मूर्तरूप

पूज्य गुरु

श्री जनार्दनप्रसाद शर्मा

को

श्रद्धाभक्ति समेत

समर्पित

—चण्डिकाप्रसाद

भूमिका

विश्व की सभी भाषाओं में प्रतिभा एवं अलौकिक-बौद्धिक-सर्जना-शक्ति-सम्पन्न कविवरों की सरस तथा चमत्कारपूर्ण काव्यात्मक उक्तियों का अत्यन्त सम्मान-पूर्ण स्थान रहा है। वे उन भाषाभाषी सहृदयों के कण्ठका हार रहती हैं। भारतीय आर्यों की संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में मानी जाती है, और संस्कृत में निर्मित वेद भूतल की प्राचीनतम एवं सर्वप्रथम वाङ्मयी कृति माने जाते हैं। वेद की ऋचाओं में जिन विषयों का प्रतिपादन हुआ है, वे आर्य जाति की तत्कालीन उन्नत संस्कृति की परिचायिका भी हैं। काव्यसौन्दर्य के साथ उनमें संगीतसुधा का जो संयोग किया गया उससे उन्हें कण्ठस्थ करने में स्वतः बड़ी सुविधा रहती थी। इस प्रकार वेदों की उन चमत्कारपूर्ण काव्यात्मक उक्तियों को "सूक्त" कहा गया। और, यह एक रूढ़ विशेषण हो गया, जो केवल वेदोक्त सुभाषितों को ही दिया गया। परवर्ती लौकिक साहित्य में इस प्रकार का सरस एवं चमत्कारपूर्ण उक्तियों को "सूक्ति" ही कहा जाता है, "सूक्त" नहीं।

ये सूक्तियाँ या तो किसी भाव की व्यञ्जिका होने से सरस होती हैं, या वाग्वैदग्ध्य एवं कल्पना के आधार पर किसी वस्तु या नीति का चमत्कारपूर्ण प्रतिपादन करती हैं। बिना रस या चमत्कार के कोई उक्ति सूक्ति नहीं कही जा सकती। उसे तो वस्तुकथन या इतिवृत्तकथन मात्र कहा जायगा।

ये सूक्तियाँ मुक्तक रूप भी हो सकती है और किसी प्रबन्ध का अंशरूप भी। जो श्लोक अकेले ही चमत्कारकारक होते हैं उन्हें मुक्तक कहते हैं—"मुक्तकं श्लोक एवैक श्चमत्कारक्षमः सताम्" (अग्निपुराण) अर्थात् जो पूर्वापर सम्बन्ध से निरपेक्ष अथवा निरन्वय रहते हुए रसानन्द तथा चमत्कार कारक हों—"पूर्वापरनिरपेक्षेणापि येन रसचर्वणाक्रियते तदेव मुक्तकम्" (लोचन)। मुक्तकों को भी प्रबन्धकाव्यों की तरह कवियों ने रसाप्लावित किया है, जैसे "अमरुशतक" के शृङ्गाररसस्यन्दी मुक्तक प्रबन्धकाव्य के समान ही प्रतीत होते हैं- (सहृदय उनके प्रसंग की कल्पना स्वयं कर लेते हैं)—मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृङ्गाररसस्यन्दिनः प्रबन्धायमानाः प्रसिद्धा एव"—(ध्वन्यालोक)।

भारतवर्ष में सबसे प्राचीन सूक्तिसंग्रह प्राकृत भाषा में है—जिसे "गाथा-सप्तशती" कहते हैं। इसके रचयिता या संकलनकर्ता हालकवि माने जाते हैं। ये हाल शालिवाहन या सातवाहन नाम वाले दक्षिण के राजा थे। इनका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी माना गया है। गाथासप्तशती में शृङ्गाररस से आपूर्ण सातसौ सुभाषितों का संग्रह है।

किन्तु लौकिक संस्कृत में सुभाषितों के चयन का क्रम बहुत बाद प्रायः ११वीं ईसवी सदी से प्रारम्भ हुआ और यह क्रम बीसवीं शताब्दी तक चलता रहा है।

कुछ प्रसिद्ध संस्कृत सुभाषित ग्रन्थ इस प्रकार हैं—सुभाषितरत्नकोष, सदुक्तिकर्णामृत, सूक्तिमुक्तावली, सुक्तिरत्नाकर, शार्ङ्गधरपद्धति, सुभाषितावली, सुभाषितसुधारत्न-भाण्डागार, सुभाषितरत्नभाण्डागार संस्कृतसूक्तिसागर, सूक्तिमञ्जरी, विद्याधर-सहस्राकर, सुभाषितहारावली, महासुभाषितसंग्रह आदि ।

संग्रहकर्ता सहृदयों ने इनमें अपनी रुचि के अनुकूल सूक्तियों का संग्रह किया है । संस्कृत साहित्य के अपार काव्यात्मक सागर से निकाले गये ये सूक्तिमौक्तिक सहृदयों के कण्ठ एवं वाणी को सदा अलङ्कृत करते रहे हैं । मैंने अपने बाल्यकाल से ही पूज्यगुरुजनों के श्रीमुखों से तथा बाद में स्वयं पुराणकाव्यादि ग्रन्थों को पढ़कर कुछ ऐसे ही सुभाषित, जो मुझे रुचिकर लगे, संगृहीत कर रक्खे थे । उन्हीं में से कुछ का स्वयं हिन्दी में दोहा में भावानुवाद कर इस भावना से कि हिन्दी प्रेमियों को भी संस्कृत के सुभाषितों से परिचय हो, इस संग्रह को मैं संस्कृत-हिन्दी-प्रेमी समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ । इसके पाँच खण्ड या अध्याय हैं । इस संग्रहग्रन्थ का नाम मैंने "सूक्ति-गङ्गाधर" रक्खा । गङ्गाधर भगवान् शिव कहे जाते हैं । उन्हें पञ्चानन भी कहा जाता है । अतः मैंने इन खण्डों या अध्यायों का नाम "आनन" रक्खा । इनमें --विशेषोक्ति, सामान्यनीति उक्ति, अन्योक्ति, रसोक्ति तथा देवस्तुति सम्बन्धी उक्तियाँ संगृहीत हैं । नीतिसम्बन्धी उक्तियों में कुछ विधि-निषेध-परक श्लोक भी हैं, जो सामाजिक जीवन में पथिप्रदर्शक के रूप में लिये गये हैं । मैंने भावानुवाद ठेठ अवधी में, जो प्रयाग जनपद तथा उसके आस-पास के भूभाग में बोली जाती है, किया है । कभी-कभी श्लोक की बातें दोहे में कुछ घट-बढ़ भी गई है ।

जिन पुण्यश्लोक कविवरों की सूक्तियों को मैंने इसमें लिया है उन सबके श्री चरणों में मैं कृतज्ञतापूर्वक नमन करता हूँ ।

इस सूक्ति संग्रह के प्रकाशन में "उत्तर प्रदेश संस्कृत-अकादमी" ने जो आर्थिक सहायता दी उसके लिए मैं उसका सर्वात्मना हार्दिक आभार मानता हूँ । अकादमी के विद्वान् एवं कुशल निदेशक श्री मधुकर द्विवेदी जी ने जो उदारता, गुणग्राहिता एवं महाशयता दिखाई है उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करने में भी मेरी वाणी अक्षम हो रही है । अन्त में संस्कृत-हिन्दी-अनुरागियों के करकमलों में इसे सौंपते हुए मैं पूर्ण विश्वस्त हूँ कि उन्हें यदि ये संस्कृत सूक्तियाँ मन की लगीं तो इन दोहों पर भी उनकी स्निग्ध दृष्टि अवश्य पड़ेगी—"कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः ।"

स्वतन्त्रतादिवस
१९९१ ई०

विद्वदाश्रव
चण्डिकाप्रसाद शुक्ल

सूक्ति-गङ्गाधर

प्रथम आनन

(विशेषसूक्तिखण्ड)

स्तुत्वाऽभीष्टफलोदारकल्पवल्लीं शिवप्रियाम् ।
स्मृत्वा विघ्नेश्वरं लम्बोदरं देवं गजाननम् ॥
श्रीजनार्दनपादाब्जं सच्चिदानन्दसुन्दरम् ।
नत्वा चानुब्रुवे सूक्तिगङ्गाधरमभीष्टदम् ॥

बांछितफलद बिनइ महाकलपलता सिवबाम ।
सुमिरि देव लम्बोदरहिं गजबदनहिं सिधिधाम ॥
बन्दि जनार्दनसिरिचरन सत्-चित्-आनँदरूप ।
भनउँ सूक्तिगंगाधरहिं निज-संबिद्अनुरूप ॥

सत्काव्य

[१]

या दुग्धापि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम् ।
हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुसरस्वती ॥

कबिदोग्धा नित दुहइँ तउ लागि अनदुही जोइ ।
मम मानस नित बास करि सूक्तिसुरसती सोइ ॥

[२]

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया ।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः ॥

सरस सुरम्य कबित्त अरु ललना लीलाखानि ।
मन न हर्यो जेहि पुरुस तेहि जोगी वा पसु जानि ॥

[३]

शिशुर्वेत्ति पशुर्वेत्ति वेत्ति गानरसं फणी।
साहित्यरसमाधुर्यं शंकरो वेत्ति वा न वा॥

सिसु, पसु, पन्नग सब रमैं गीतमाधुरी माँहि।
काव्यमाधुरी, को कहै, सिवहू जानि कि नाँहि॥

[४]

सुभाषितरसास्वादबद्धरोमाञ्चकञ्चुकाः।
विनापि कामिनीसंगं कवयः सुखमासते॥

कबितारसआनंदभरि रोमांचित सब गात।
बिना कामिनीसंगहू कबिहिय सुख न समात॥

[५]

श्लोकार्थस्वादकाले तु शब्दोत्पत्तिविचिन्तकाः।
नीवीविमोक्षवेलायां वस्त्रमौल्यविचिन्तकाः॥

काव्यसुधारसपानछन करइ जो सबदबिचार।
सारीदाम सो पूँछई छोरत नीवि गंवार॥

[६]

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृतरसास्वाद आलापः सज्जनैः सह॥

गरलरूख यहि जगत कर दुइ फल अमरित माप।
सुधास्वाद एक काव्य, अरु सुजन-संग-संलाप॥

[७]

अधरस्य मधुरिमाणं कुचकाठिन्यं दृशोस्तथातैक्ष्ण्यम्।
कवितायाः परिपाकाननुभवरसिको विजानाति॥

कुचककठोरपन, तीखपन नयनन्हि कर जो आन।
अधरमधुरिमा, काव्यरस जेहि अनुभव सोइ जान॥

[८]

सुभाषितज्ञेन जनेन साकं संभाषणं सुप्रभुसेवनं च।
आलिङ्गनं तुङ्गपयोधराणां प्रत्यक्षसौख्यत्रयमेव लोके॥

संभासन सूक्तिज्ञसँग, सेवा सुप्रभु केरि।
आलिगन पीवरकुचन्हि, तीनहिं सुख जग हेरि॥

[९]

गृह्णन्तु सर्वे यदिवा यथेष्टं नास्ति क्षतिः कापि कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमर्त्यैरद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः॥

कबिजन गहहिं यथेच्छ तउ किछु कबिन्द छति नाय।
लूटि रतन सुर, सिधु तउ रतनाकर कहलाय॥

[१०]

लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥

रावन जो अपजसु लहेउ, राघव जो जसु पाउ।
सो प्रभाउ बलमीकि कर, कबिहिं न कोपिय काउ॥

[११]

तत्त्वं किमपि काव्यानां जानाति विरलो भुवि।
मार्मिकः को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम्॥

जगबिच काव्यमरम कोउ बिरलइ जाननहार।
स्वाद कुसुममकरन्द कर बिनु मधुकर को धार॥

[१२]

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम्।
कासारे दिवसं वसन्नपि पयःपूरं परं पङ्किलं
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः?॥

सारस्वत बैभव मिलइ केवल कबिहिं न आन।
कमलाकर पंकिल करइ महिस सुगन्ध न जान॥

—:o:—

पण्डित

[१३]

वेश्यानामिव विद्यानां मुखं कैः कैर्न चुम्बितम् ।
हृदयग्राहिणस्त्वासां द्वित्राः सन्ति न सन्ति वा ॥

**बिद्यामुख चूमैं सभी बेस्यामुख सों लेखि ।
ताको हिय पुनि गहहि जो बिरला सो जन देखि ॥**

[१४]

श्रुते महाकवेः काव्ये नयने वदने च वाः ।
युगपद् यस्य नोदेति स वृषो महिषोऽथवा ॥

**सुनि कविता सुकबीन को मुख नयननिसों वाह (वाः) ।
जाहि न निकसत एक संग सो बृस महिस सराह ॥**

[१५]

इह तुरगशतैः प्रयान्तु मूढा धनरहितास्तु बुधाः प्रयान्तु पद्भ्याम् ।
गिरिशिखरगतापि काकपङ्क्तिः पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः ॥

**मूढ धनी गज तुरग चलि निरधन बुध पादाति ।
गिरिसिखरहुँ थित काक कहुँ थलगत हंस सो भाति ?**

[१६]

श्लोकस्तु श्लोकतां याति यत्र तिष्ठन्ति साधवः ।
लकारो लुप्यते तत्र यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः ॥

**स्लोक स्लोकसम सुखद अति जब स्रोता होइ साधु ।
लुप्त लकार दिखात तव मिलि स्रोता जो असाधु ॥**

[१७]

अक्रुद्ध्यन्तोऽनसूयन्तो निरहंकारमत्सराः ।
ऋजवः शमसम्पन्नाः शिष्टाचारा भवन्ति ते ॥

**मत्सर-क्रोध-अहंकृति - परनिन्दा तें दूर ।
अकुटिल, सान्तिप्रधान जे, सिस्टाचार ते पूर ॥**

[१८]

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो नातिमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

क्रोध, हरख, ह्री, दरप अरु हठ, आतम-सम्मान।
नाहिं डिगावहिं लक्ष्य तें जेहिं, तेहिं पण्डित जान॥

[१९]

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

जासु कृत्य अरु मन्त्र पुनि मन्त्रित जानि न कोउ।
जानहिं केवल कियो जो, सो जग पण्डित होउ॥

[२०]

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥

सीत, उखम, भय, रति तथा बढ़ती, घटती जाहि।
कारजबिघन न करि सकहिं पंडित कहियत ताहि॥

[२१]

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः॥

जथासक्ति चाहहिं करइ, करइं त सक्ति लगाइ।
नहिं अपमानहिं कतहुँ केहु, तेइ पंडित पद पाइ॥

[२२]

क्षिप्रंविजानाति चिरंश्शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टोह्युपयुङ्क्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥

देर सुनइं, समुझइं तुरत, करि न कामबस काज।
बिनु पूँछे केहु कहि न किछु, प्रथम सो पंडित छाज॥

[२३]

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥

जो अलभ्य तेहि चाहि नहिं, नस्ट न सोचहिं काउ ।
आपति खोइ बिबेक नहिं, पंडितबुद्धि कहाउ ॥

[२४]

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥

आरज करम रमहि जे, करइं भूतिप्रद काज ।
नहि निन्दहि हितकारि जे, ते पण्डित कुरुराज ॥

[२५]

न हृषत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥

लहि सम्मान न फूलि जो, नहिं अपमान गलान ।
रहि अछोभ जिमि गंगदह, सोइ जन पंडित जान ॥

[२६]

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥

सास्त्र समुझि निज बुद्धिसौं, बुद्धि सास्त्र अनुसारि ।
सिस्टाचरन न त्यागि, सो आख्या पंडित धारि ॥

[२७]

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा ।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥

बिद्या वा ऐस्वर्ज वा बड़ी सिद्धि किन पाइ ।
बिनय न त्यागइ पुरुस सो पंडित जगत कहाइ ॥

—:o:—

सज्जन

[२८]

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोरमाः ॥

नारिकेलफलसम सुजन भीतर सरस सुसाधु ।
बाहिर हो सुन्दर जँचै बदरीसरिस असाधु ॥

[२९]

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥

बिद्यामद, धनमद, अपर अभिजनमद पुनि जोइ ।
मद अभिमानिहि दुरजनहि, सज्जन कहुँ दम सोइ ॥

[३०]

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

भूमि, उदक्, तृन, साँचप्रिय बानी पुनि ये चार ।
सज्जनगृहमँह अतिथिहित सदा मिलइँ तैयार ॥

[३१]

न प्रतिज्ञां तु कुर्वन्ति वितथां साधवोऽनघ ।
लक्षणं तु महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥

कीन्हि प्रतिज्ञा साधु जो करइ असत्य न ताहि ।
महिमालच्छन मनुजकर सतसन्धता सराहि ॥

[३२]

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥

अंजलिथित सुभगंधि बर दुहुँ कर बासइ फूल ।
तुल्यप्रीति रिपुमित्रसन करइ सुमन अनुकूल ॥

[३३]

बज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

बज्रहुं ते अतिकठिन अरु मृदु कुसुमहुँ ते भूरि ।
चित्त अलौकिक पुरुस कर जानि सकइ को पूरि ॥

[३४]

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः ॥

गंग पाप, ससि ताप, तरुकलप दीनता दुरन्त ।
पाप, ताप, अरु दीनता नासि महासय सन्त ॥

[३५]

संपदो महतामेव महतामेव चापदः ।
वर्धंते क्षीयते चन्द्रो नतु तारागणः क्वचित् ॥

संपति लहइ महान ही, बिपतिउ लहइ महान ।
बढ़इ घटइ केवल ससी, नहिं कहुँ तारा आन ॥

[३६]

अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्त्यपि ॥

महापुरुसकर चरित जग बन्दि बिचित्र सुहाइ ।
लछिमिहिं तृनसम जान, पर नवहिं भार तेहि पाइ ॥

[३७]

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः ।
चित्ते वाचि क्रियायांच साधूनामेकरूपता ॥

जथा चित्त बानी तथा, करम बानिअनुरूप ।
चित्त बानि अरु करम महँ सज्जन एकइ रूप ॥

[३८]

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥

प्रिय बोल्यो, परहित कियो, निस्छल नेह जो दीन्ह ।
सज्जन केर स्वभाव यहि, को सीतल ससि कीन्ह ॥

[३९]

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मसु ॥

गुनहीनउ पर साधुजन दया करहिं, न दुराउ ।
चन्द जुन्हाई करइ पुर चंडालहु घर पाउ ॥

[४०]

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भि रुच्यते ॥

उपकारिन प्रति साधुता नहिं साधुता प्रमानि ।
अपकारिन प्रति साधु जो, बुध तेहि साधु बखानि ॥

[४१]

नूनं दुग्धाब्धिमन्थोत्थाविमौसुजनदुर्जनौ ।
किन्त्विन्दोः सोदरः पूर्वः कालकूटस्यचेतरः ॥

छीरसिन्धुमंह मथन ते निकस्यौ सन्त असन्त ।
इन्दु सहोदर सन्त पुनि सोदर गरल असन्त ॥

[४२]

वित्ते त्यागः, क्षमा शक्तौ, दुःखे दैन्यविहीनता ।
निर्दम्भता सदाचारे, स्वभावोऽयं महात्मनाम् ॥

त्याग बित्तबिच, सक्तिबिच छिमा, कस्टबिच धीर ।
सदाचरनबिच दम्भ नहिं, साधु स्वुभाव गभीर ॥

[४३]

मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः ।
पङ्गुः परधनहरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः ।।

परनिन्दामहँ गूँग पुनि अन्ध देखि पर नारि ।
पंगु जो परधन हरन बिच तीन लोक जित झारि ।।

[४४]

भक्तिर्भवे न विभवे, व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामास्त्रे ।
चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम् ।।

भव सन भगति न बिभवसन, ब्यसन स्रुतहिं न अनंग ।
चिन्ता जसुहिं न देह प्रति महापुरुस यहि ढंग ।।

[४५]

विप्रियमप्याकर्ण्य ब्रूते प्रियमेव सर्वदा सुजनः ।
क्षारं पिबति पयोधेर्वर्षत्यम्भोधरोमधुरमम्भः ।।

कटु बचनउ सुनि सुजन नित प्रिय बोलहिं नहि आन ।
सिन्धु-छार-जल पिय करइ जलद मधुर पय दान ।।

[४६]

सज्जनस्य हृदयं नवनीतं यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम् ।
अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ।।

सज्जनहिय नवनीतसम मिथ्या कविजन गीत ।
सज्जन परपरिताप सों द्रवइ न कहुँ नवनीत ।।

[४७]

वनेऽपि सिंहा मृगमांसभक्षिणो बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति ।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समारभन्ते ।।

सिंह खाइ मृगमांस बन, भूखो चरइ न घास ।
तिमि कुलीन परि बिपति तउ करम न नीच अँवास ।।

[४८]

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति नैवाश्रितेषु महतां गुणदोषशङ्का ॥

मित्रद्रोही कुटिल पुनि दोसाकर सकलंकि।
तऊ ससी सिवप्रिय, बड़ो आस्रित-दोस न संकि ॥

[४९]

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटंकूर्मोबिभर्तिधरणीं खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति दुर्वहवाडवाग्निमङ्गीकृतंसुकृतिनः परिपालयन्ति ॥

अजहुँ सम्भु गल बिस धरइँ, कूर्म पीठ भू बाहि।
सागर बाडव आग धरि, सुकृती अँगइ निबाहि ॥

[५०]

तुङ्गात्मनां तुङ्गतराःसमर्था मनोरथान् पूरयितुं न नीचाः।
धाराधरा एव धराधराणां निदाघदाहं शमितुं न नद्यः ॥

बड़ो मनोरथ बड़न को पूरइ बड़इ न नीचि।
हरइ ताप भूधरन को मेघ न सरितनबीचि ॥

[५१]

विश्वाभिरामगुणगौरवगुम्फितानां रोषोपि निर्मलधियांरमणीय एव।
लोकप्रियैः परिमलैःपरिपूरितस्यकाश्मीरजस्यकटुतापिनितान्तरम्या ॥

बिस्वसुखद गुनभूरि जे कोपहु तिन्हकर रम्य।
केसर सौरभभरित कँह कटुतउ परम प्रनम्य ॥

—:o:—

दुर्जन

[५२]

दुर्जनं प्रथमं बन्दे सज्जनं तदनन्तरम्।
मुखप्रक्षालनात् पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ॥

दुरजन प्रथमहि बन्दि पुनि सज्जन बन्दिय कोइ।
गुदप्रच्छालन करि जथा मुखप्रच्छालन होइ ॥

[५३]

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥

जे बोद्धा ते मत्सरी, प्रभुजन धनमद पूर ।
सेस सकल अज्ञानहत, भइ कबिता हिय चूर ॥

[५४]

वर्धेते स्पर्धयोवोभौ सम्पदा शतशाखया ।
अङ्कुरोऽवस्करोद्भूतः पुरुषश्चाकुलोद्भवः ॥

स्परधा सों दोऊ बढ़ें सम्पति चहुँ दिसि पाइ ।
बिस्ठा को अंकुर तथा पुरुस नीच कुल जाइ ॥

[५५]

घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न साधयितुम् ।
पातयितुमस्ति शक्तिर्वायोर्वृक्षं न चोन्नमयितुम् ॥

जानइ नासन काज पर, साधन जान न नीच ।
बायु गिरावइ रूख, कहुँ सकि न उठाइ गलीच ॥

[५६]

निर्माय खलजिह्वाग्रं सर्वप्राणहरं नृणाम् ।
चकार किं वृथा शस्त्रविषवह्नीन् प्रजापतिः ॥

खलजिह्वाग्र बनाइ बिधि सर्बप्रानहर एक ।
सस्त्र, हलाहल, बन्हि किमि बृथा बनाइ अनेक ॥

[५७]

वर्जनीयो मतिमता दुर्जनः सख्यवैरयोः ।
श्वा भवत्युपघाताय लिहन्नपि दशन्नपि ॥

प्रीति बैर दुहूँ नहिं दुरजन संग करनीय ।
घातुक चाटेउ काटेऊ कूकुर परिहरनीय ॥

[५८]

श्रुतेनापि हृदिस्थेन खलो न स्यात् सुशीलवान् ।
मधुना कोटरस्थेन निम्बः किं मधुरायते ।।

सास्त्र पढ्यो मनमों धर्‍यो खल न सुसील बनाइ ।
कोटर मँह मधुछात लगि नीम कि मधुर जनाइ ।।

[५९]

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतोवा विसर्जनम् ।।

खल सँग अरु कंटकन सँग दुइ प्रकार ब्यवहार ।
मारि उपानह तोरि मुख दूरतें वा परिहार ।।

[६०]

नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ।।

नीच निहारइ आनकर सरसोंसम लघु दोस ।
अपनो बेलसमान पुनि लखि न लखइ मलकोस ।।

[६१]

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदंहिदुरात्मनाम् ।।

निरदय, कलही हेतु बिन, परधन - दारा चाहि ।
सुजन बन्धुजन सहि न सकि, कहिय दुरात्मा ताहि ।।

[६२]

दुर्जनवदनविनिर्गतवचनभुजंगेन सज्जनो दष्टः ।
तद्विषनाशनिमित्तं साधुः सन्तोषमौषधं पिबति ।।

दुरजन मुख बिलसों निकसि बचन साँप डसि जीव ।
सज्जन तेहि बिस-नास-हित सन्तोसौखधि पीव ।।

[६३]

उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥

नीच संग उपकार करि फल अपकारक पाउ।
दूध पिआइब साँप कहुँ केवल गरल बढ़ाउ ॥

[६४]

वक्रतां बिभ्रतो यस्य गुह्यमेव प्रकाशते।
कथं खलु समो न स्यात्पुच्छेन पिशुनः शुनः ॥

जो टेढो रहि जगत बिच निज गुह्यता दिखाइ।
स्वानपुच्छ जिमि कस न सो दुरजन पिसुन कहाइ ॥

[६५]

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम्।
अहो सुसदृशी वृत्ति स्तुलाकोटेः खलस्य च ॥

थोरेहि मँह ऊपर उठहिं थोरेहि नीचे जाँहि।
तुलादंड खलपुरुसकर सरिस बृत्ति जगमाँहि ॥

[६६]

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाः विषं शिरः।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छं सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥

तच्छक दन्त बसइ बिस रहइ मसककर सीस।
बिस बिच्छूकर पूँछमँह दुरजन सब अंग बीस ॥

[६७]

उपदेशोहि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥

मूरख कहँ उपदेस किय सांति न, कोप बढ़ाइ।
दूधपान पन्नग किये केवल गरल गढ़ाइ ॥

—:o:—

मूढ

[६८]

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥

सास्त्रज्ञान नहिं, दृप्त तउ, निरधन तऊ उतान ।
अकरमन्य रहि धन चहइ, मूढबुद्धि पहिचान ॥

[६९]

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥

जो न मीत तेहि मीत किय मीतहि द्वेसि सताइ ।
दुस्ट करम अपनाइ सो मूढचित्त कहि जाइ ॥

[७०]

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।
सुहृन्मित्रं न लभते मूढचेता नराधमः ॥

पितरहिं देइ सराध नहिं, देवन पूजि न केउ ।
केहु सन मैत्री प्रेम नहिं मूढमना कहि तेउ ॥

[७१]

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुद्ध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥

आनहिं दोस लगाइ जो स्वयं दोस कहुँ बीच ।
क्रोध करइ असमरथ सो मूढ नराधम नीच ॥

[७२]

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥

बिनहि बुलाये जाय अरु बिनु पूछे बहु बोलि ।
अबिस्वस्त कहुँ बिस्वसइ मूढ अधम तेहि तोलि ॥

[७३]

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥

अपनो बल नहिं समुझि जो धरम अरथ सो हीन ।
बिनहि जतन पावन चहइ दुरलभ जड मतिदीन ॥

—:०:—

उदार

[७४]

कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयंमहात्मनाम् ॥

त्वचा करन, निज मांस सिबि, अस्थि दधीचहु देय ।
जिउ जिमूतवाहन दियौ दानिहि किछु न अदेय ॥

[७५]

अनुकूले विधौ देयं यतःपूरयिता हरिः ।
प्रतिकूले विधौदेयं यतः सर्वं हरिष्यति ॥

दान करहु पुरिहँहि हरी जो बिधि हइ अनुकूल ।
दान करहु छिनिहँहि हरी जो बिधि हइ प्रतिकूल ॥

[७६]

गौरवं प्राप्यते दानान्नतु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥

पद उन्नत धनदान ते, पद अवनत धन राखि ।
ऊपर साखि पयोद तिमि नीच पयोनिधि साखि ॥

[७७]

ग्रासादपि तदर्धं च कस्मान्नोदीयतेऽर्थिषु ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

माँगत जाचक दीजिए कौरहु आधो कौर ।
इच्छारूप बिभव कहां केहिके आयो दौर ॥

—:०:—

कृपण

[७८]

कृपणः स्ववधूसंगं न करोति भयादिह।
भविता यदि मे पुत्रः स मे वित्तं हरिष्यति॥

तजइ स्वदारप्रसंग नित कृपिन हृदय भय मानि।
होइ है सुत तो धन मेरो बँटिहै करि बिलगानि॥

—:०:—

लक्ष्मी

[७९]

हालाहलो नैव विषँ बिषँ रमा जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः॥

हालाहल नहिं बिस, रमा बिस जगजन; भ्रम माहिं।
हालाहल पिय सिव जगहि, हरि छुइ रमा निदाहि॥

[८०]

यद् वदन्ति चपलेत्यपवादं नैव दूषणमिदं कमलायाः।
दूषणं जलनिधेर्हि भवेत् तद् यत् पुराणपुरुषाय ददौ ताम्॥

कमला चपला होत नहि झूठ दोस जग देइ।
सौंपेसि पुरुस पुरान जो पिता दोस सो लेइ॥

[८१]

समायाति यदालक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुवत्।
विनिर्याति यदालक्ष्मी गजभुक्तकपित्थवत्॥

नारिकेलफलमध्यजलसरिस रमा घर आइ।
पुनि गजभुक्तकपित्थजिमि जाइचहइ त जाइ॥

[८२]

कुटिलालक्ष्मी यत्र प्रभवति न सरस्वती वसति तत्र।
प्रायः श्वश्रूस्नुषयोर्न दृश्यते सौहृदं लोके॥

कुटिल रमा जहँ बसइ तहँ नहिं सुरसतीनिवास।
सास-पतोहू-बीच जग दीख न कतहुँ सुपास॥

[८३]

शूरं त्यजामि वैधव्यादुदारं लज्जया पुनः।
सापत्न्यात् पण्डितमपि तस्मात्कृपणमाश्रये ॥

सूर तजौं बैधब्यडर लज्जाडरहिं उदार।
सौतडाह पण्डित तजौं, ताते कृपिन पियार ॥

[८४]

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभोऽन्येन रोषाद्
आबाल्याद् विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ नित्यं त्यजामि ॥

तातहिं पीन्हि अगस्त मुनि पतिहिं लात भृगु मारि।
सैसव तें द्विज बदनबिच बैरि सुरसती धारि ॥
नित्य निवास उजासि मम पूजाहेतु उमेस।
तेहि ते खिन्न सदा तजौं बिप्रभवन सबिसेस ॥

[८५]

श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम्।
उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि ॥

लछिमीपरिचय पाइ नर जडहू होइ सुजान।
जौवनमद कामिनीजनहि सिखइ सकल ललितान ॥

[८६]

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञंव्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥

उत्साही अरु छिप्रकरि प्रेमी सूर कृतज्ञ।
क्रियाबिज्ञ निर्ब्यसन मँह लछिमी बसइ गुणज्ञ ॥

—:०:—

दरिद्रता

[८७]

परीक्ष्य सत्कुलं विद्यां शीलं शौर्यं सरूपताम् ।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम् ।।

सत्कुल बिद्या सील गुन रूप सौर्जं पहिचानि ।
देइ गरीबी सुता निज बिधि सब बिधि सनमानि ।।

[८८]

शीतमध्वा कदन्नं च वयोतीताश्च योषितः ।
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः ।।

सीतकस्ट पैदलगमन सब किछु मनप्रतिकूल ।
जरठा नारि कदन्न यहि हेतु जराकर मूल ।।

[८९]

मृतो दरिद्रः पुरुषः मृतं मैथुनमप्रजम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।।

पुरुस दरिद्री मृत गनिय, मैथुन बिनु सन्तान ।
स्राद्ध असोत्रिय जग्गि तिमि बिना दच्छिनादान ।।

[९०]

लज्जन्ति बान्धवास्तेन सम्बन्धं गोपयन्ति च ।
मित्राण्यमित्रतां यान्ति यस्य न स्युः कपर्दकाः ।।

बन्धु लजाइं छिपावइं नातौ तेहि सन आप ।
मीतहु होइं अमीत तेहि जाहि गरीबी पाप ।।

[९१]

मूर्तं लाघवमेवैतदपायानामिदं गृहम् ।
पर्यायो मरणस्यायं निर्धनत्वं शरीरिणाम् ।।

लघुता रूप, कलेसकर गृह साच्छात् बखान ।
अपर नाम यहि मरनकर निरधनता जगजान ।।

[६२]

अजाधूलिखिन्नस्तैर्मार्जिनीरेणुवज्जनैः ।
दीपखट्वोत्थछायेव त्यज्यते निर्धनो जनैः ॥

अजा-मरजनी-धूलि-जिमि, दीपक-खटिया-छाँव ।
डरि छोड़इँ निरधनहिं जग, लेन न चाहइँ नाँव ॥

[६३]

अधनो दातुकामोऽपि संप्राप्तो धनिनां गृहम् ।
मन्यते याचकोऽयंधिक् दारिद्र्यं खलु देहिनाम् ॥

निरधन पहुँचि धनिक गृह देन चहइ किछु आप ।
धनी समुझि जाचन अयो, धिक् निरधनता पाप ॥

—:o:—

उद्यम

[६४]

उद्योगः खलु कर्तव्यः फलं मार्जारवद् भवेत् ।
जन्मप्रभृति गौर्नास्ति पयः पिबति नित्यशः ॥

करिय सदा उद्योग निज फल लहि जथा बिडाल ।
धेनु न पाल्यो जनम भरि दूध पिअइ सब काल ॥

[६५]

व्यापारान्तरमुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम् ।
यो गृहेष्वेव निद्राति दरिद्राति स दुर्मतिः ॥

तजि उद्योग निरन्तर बधूबदन चित दीन्ह ।
करमहीन सो नींद मिस दूख दरिद्दर लीन्ह ॥

[६६]

यत्रोत्साहसमारम्भो यत्रालस्यविहीनता ।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम् ॥

काज करिय उत्साह भरि आलस दूर भगाइ ।
नीति - सक्ति दुहूँ जोग तहँ लछिमी अचल सहाइ ॥

—:o:—

धन

[९७]

नवित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित् स्वल्पमप्यहो।
मुनेरपियतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः॥

बुध न दिखाइय कबहुँ केहु थोरउ आपन वित्त।
बिचलित होइ अनरथ करइ देखि मुनिहुँ कर चित्त॥

[९८]

ऊष्मापि वित्तजो वृद्धिं तेजो नयति देहिनाम्।
किं पुनस्तस्य संभोगस्त्यागकर्मसमन्वितः॥

धनउखमा सों मनुज महँ तेज बढ़इ बहुरूप।
त्याग भोग सों, को कहइ, कियत बनाइ अनूप॥

[९९]

शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयंवित्तमुपार्जितम्।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन॥

जो निज अरजित वित्त तेहि सनै सनै करि भोग।
मानि रसायन सम सुधी हेला करन न जोग॥

[१००]

यदुत्साही सदा मर्त्यः पराभवति यज्जनान्।
यदुद्धतं वदेद्वाक्यं तत्सर्वं वित्तजं बलम्॥

जो उत्साही दिखइ नर जीतइ जो सब डाहि।
बोलइ उद्धत बचन जो धनबल जानब ताहि॥

[१०१]

दातव्यं भोक्तव्यं धनविषये संचयो न कर्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये॥

धनहिं दीजिए भोगिए कबहुँ संचिए नाहिं।
मधुमाखी जो संचई छीनि आन लइ जाहिं॥

[१०२]

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा तस्यापि न शुभावहा।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

धरमहेतु धनकामना उचित न सोउ दिखाइ।
पंक लगाइ छुड़ाइबो भलो न ताहि लगाइ॥

[१०३]

अन्यायात्समुपात्तेन दानधर्मो धनेन यः।
क्रियते न स कर्तारं त्रायते महतो भयात्॥

अन्यायरजित वित्त तें दान धरम जो ठान।
ताते करता नहिं लहइ पाप-दंड तें त्रान॥

[१०४]

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्यु धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मास्म तेषु मनः कृथाः॥

अति कलेस करि जो मिलै, धरम तजे वा भूरि।
वैरिहि वा प्रनिपात तें सो धन राखिय दूरि॥

[१०५]

धनमस्तीति वाणिज्यं किञ्चिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किञ्चिदस्तीति भिक्षा नैव च नैव च॥

करु बानिज धन अधिक जदि थोरे बनहु किसान।
किछु न होइ त नौकरी, कबहुँ न भीख ठिकान॥

[१०६]

इदमेव हि पाण्डित्यं चातुर्यमिदमेव हि।
इदमेव सुबुद्धित्वमायादल्पतरो व्ययः॥

इहइ पंडिताई बड़ी चतुराई बड़ि देखि।
इहइ बुद्धिमानी बड़ी आयते कम व्यय लेखि॥

[१०७]

आयाधिकं व्ययं कुर्वन् को न याति दरिद्रताम् ।
यस्य व्ययाधिकस्त्वायः स धनी न धनी धनी ॥

आय तें अधिक जो व्यय करिय होइ दरिद्र न बेर ।
व्यय तें अधिक जो आय तो धनी न दूसर हेर ॥

[१०८]

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्यभुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥

करि अधरम जो धन लह्यो तेहि सन किय जगिदान ।
धन दूसित जो लग्यौ सो पुन्नि न किछु फलवान ॥

[१०९]

यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥

जितनो भूपर अन्न धन स्त्री पसु सब मिलि होउ ।
जदि एकहिकर, पुरि न तउ, तेहिते भरमि न कोउ ॥

[११०]

अधनं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलवान् भवेत् ।
सर्वं धनवता प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान् ॥

निरधन दुरबल सबहिं विधि धन तें नर बलवान ।
धनवानहि सब सुलभ जग सब साधइ धनवान ॥

[१११]

यस्यार्थास्तस्यमित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥

जेहि के धन सब मीत तेहि सब तेहि बान्धव होइ ।
सोइ पुरुस संसार महँ पंडित पुनि जग सोइ ॥

[११२]

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्चदाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ।।

धन विहीन कहँ तजइ सब मीत पूत अरु नारि ।
धन आये पुनि तेहि गहँहि, धनइ एक हितकारि ।।

—:०:—

कीर्ति

[११३]

चलं वित्तं चलं चित्तं चलं जीवितयौवने ।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति ।।

बितचितजीवित छनिक सब जौवन छनिक बिचार ।
सोइ जीवित यहि जगत मँह कीरति जासु पसार ।।

[११४]

कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ।।

कीरति राखहु जतन करि कीरति बड़ बल जान ।
कीरति नास भई मनुज जीवन निसफल मान ।।

—:०:—

गुण

[११५]

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः ।।

गुनी पूजियत गुनन तें पिताबंसते नाहिं ।
नवइ बासुदेवहि जगत बसुदेवहिं कोउ नाहिं ।।

—:०:—

विद्या

[११६]

विद्या शस्त्रं च शास्त्रं च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽ द्रियते सदा।।

ज्ञानहेतु बिद्या दोऊ सस्त्र सास्त्र सम जान।
बूढ़ भये पुनि सस्त्र सों हंसी, सास्त्र सों मान।।

[११७]

मातेवरक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते कान्तेवचाभिरमयत्यपनीय खेदम्
कीर्तिं च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं किं किं न साधयति कल्पलतेवविद्या

माता सम रच्छा करइ पिता सरिस हित पूरि।
कान्ता सम अभिरमइ बित जसु बिद्या दइ भूरि।।

[११८]

गतेऽपिवयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यद्यपिस्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि।।

बयस बितेउ विद्या पढइं बुधजन सब विधि चाहि।
सुलभ सो जनमान्तर, जदपि इहजीवन फल नाहि।।

[११९]

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्।।

बिद्या जो पुस्तकधरी परअधीन धन जौन।
काज पड़े नहि काम देइ ऊ विद्या धन तौन।।

—:०:—

कृतघ्न

[१२०]

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृति र्विहिता लोके कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।।

चोर सुरापी ब्रह्महा भग्नव्रती जो आँय।
निकृती सब कँह विहित जग निकृति कृतघ्नहि नाँय।।

— :०:—

तृष्णा

[१२१]

गिरिर्महान् गिरेरब्धिर्महानब्धेर्नभोमहत् ।
नभसोऽपिमहद् ब्रह्म ततोऽप्याशा गरीयसी ॥

भूधर ते सागर बड़ो, नभ सगरहुँ ते बिसाल ।
नभते ब्रह्म बड़ो कह्यो, तेहुँते तृस्नाजाल ॥

[१२२]

दन्ता विश्लथदन्ताः केशाः काशप्रसूनसंकाशाः ।
नयनं तमसामयनं तथापि चित्तं धनाङ्गनायत्तम् ॥

बिरल भई दन्तावली केस कुसुमजिमि कास ।
नयन अँधेरो बास तउ मन घनबनिता पास ॥

—:o:—

धीर

[१२३]

अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकिश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

सिन्धु नहरु, वेदी धरा, थलिजिमि दिखइ पताल ।
बाँबी लगइ सुमेरु गिरि दृढ धीरहिं तिहुँ काल ॥

[१२४]

असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम् ।
अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्मापिजीवितम् ॥

द्वार न सेवेउ प्रभुन कर, भोगेउ बिरह न पीर ।
बोलेउ दीन न बचन कहुँ धनि जीवन तेहि धीर ॥

[१२५]

न सदश्वाः कशाघातं न सिंहा घनगर्जितम् ।
परैरङ्गुलिनिर्दिष्टं न सहन्ते मनस्विनः ॥

जाति तुरग न कसा सहइ घनगरजन न मृगेस ।
मानी पुरुस न सहि सकं परअँगुलीनिरदेस ॥

—:o:—

आत्मश्लाघा

[१२६]

न सुखं न च सौभाग्यं स्वयं स्वगुणवर्णने ।
यथैव च पुरन्ध्रीणां स्वहस्तकुचमर्दने ॥

को सुख को सौभागि मिलि किय निज मुख गुनगान ।
जिमि ललना जुवतीन कँह निजकर कुचमरदान ॥

—:०:—

मित्र

[१२७]

यस्य मित्रेण संभाषा यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
मित्रेणसह यो भुङ्क्ते ततो नास्तीह पुण्यवान् ॥

मीत संग बतियान जो मीत संग जो थान ।
मीत संग भोजन, बड़ो पुन्नि न तेहि ते आन ॥

[१२८]

शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्यं सुखदुःखयोः ।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ॥

सुचि त्यागी अरु सूरमा सुख दुख भाव समान ।
अनुरागी, औदार्जजुत, साँचो मीत बखान ॥

[१२९]

इच्छेच्चेद् विपुलां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत् ।
वाग्वाद मर्थसम्बन्धं तत्पत्नीपरिभाषणम् ॥

जदि मैत्री चाहहु बिपुल बरजहु तीन प्रसंग ।
बागबाद धनब्यवहरब तेहि पतनी सन संग ॥

[१३०]

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥

देइ लेइ पूछइ कहइ गुप्त परस्पर जोइ ।
खाइ खियावइ प्रीतिकर छहँबिध लच्छन होइ ॥

[१३१]

रहस्यभेदो याच्ञा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूत मेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥

रहसभेद पुनि जाँचबो निठुराई चल चित्त ।
क्रोध, झूठ अरु द्यूत यहि दोस बिनासहिं मित्त ॥

[१३२]

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।
तयोर्विवाहः सख्यं च नतु पुष्टविपुष्टयोः ॥

जिनकर बित्त समान अरु जिनकर चित्त समान ।
मैत्री ब्याह तिनहिं संग नहिं अबलहिं बलवान ॥

[१३३]

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

सम्मुख बोलइ प्रिय बचन पीछे काज बिनासि ।
तजिय एतादृस मीत जो बिषघट पयमुख भासि ॥

[१३४]

न तन्मित्रं यस्यकोपाद् बिभेति यद्वा मित्रं शंकितेनोपचर्यम् ।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद् वैमित्रं संगातानीतराणि ॥

मीत न सो जेहि कोपडर जेहि संग भयब्यवहार ।
मीत सो पितु सम आस्वसइ, संगी सेस प्रकार ॥

[१३५]

उपकाराच्च लोकानां निमित्तान्मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां मैत्री स्याद्दर्शनात् सताम् ॥

लोग मीत उपकार सों, खगमृग लागि निमित्त ।
मूढ मीत भयलोभ बस सुजन दिखातहिं मित्त ॥

[१३६]

कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी।
अविचार्य प्रियं कुर्यात् तन्मित्रं मित्रमुच्यते॥

देह केर हित हाथ करि पलक बचावइ आँखि।
तिमि जो मीत क हित करइ मीत सो साँचो भाखि॥

[१३७]

अर्चयेदेव मित्राणि सतिवाऽसति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम्॥

मीतहिं सम्मानिय सदा धनी होइवा दीन।
बिनु माँगे नहिं जानि कोउ मीत पोन बा छीन॥

[१३८]

सुहृदां हि धनं भुक्त्वा कृत्वा प्रणयमीप्सितम्।
प्रतिकर्तुमशक्तस्य जीवितान्मरणं वरम्॥

मीतन कँह धन भोगि भल इच्छित नेह दिखाइ।
करि न सकइ प्रतिदान तेहि जियबहु मरन जनाइ॥

[१३९]

तदेवास्य परं मित्रं यत्र संक्रामति द्वयम्।
दृष्टे सुखं च दुःखं च प्रतिच्छायेव दर्पणे॥

परम मीत तेहि जानिये जेहि मँह देखिय होउ।
दरपन बिच प्रतिबिम्ब जिमि सुख दुख छाया दोउ॥

[१४०]

मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धे धैर्यस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणे जनो जानाति सारताम्॥

मीतस्वजनबन्धून्न कर निज मतिधीरज केर।
बिपति परीच्छा होत, तब ताहि मूल्य जन हेर॥

[१४१]

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि।
विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे॥

नहिं जननी नहिं दार महँ नहिं अपुनेउ, नहिं भाइ।
करइ पुरुस बिस्वास तस जस सुमीत महँ लाइ॥

[१४२]

क्षीरेणात्मगतोदकायहि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावक मुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी॥

निज गुन जल कँह दीन्ह पय, जल पयताप विलोकि।
प्रथमहिं आपु जलावई, पय न आपु कँह रोकि॥
उफनि आग मँह गिरन चह, जल तेहि प्रसमित कीन्ह।
सुजन मिताई केरि अस जगमँह बुधजन चीन्ह॥

[१४३]

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम्॥

रोगी जो, धन हीन जो, जो बिदेस करि बास।
सोक दग्ध जो तिन्हनकर मीत मिलन दुखनास॥

[१४४]

दर्शितानि कलत्राणि गृहे भुक्तमशंकितम्।
कथितानि रहस्यानि सौहृदं किमतः परम्॥

दिखरायो गृहतियन सब भोजन किय मन चाहि।
सब रहस्य तेहि सन कह्यो मितइ अधिक को आहि॥

[१४५]

चिबुके यस्य रोमाणि न च रोमाणि गण्डयोः।
तेन मैत्री न कर्तव्या यदि शून्या वसुन्धरा॥

बाल चिबुक पर होंइ जेहि बाल गाल पर नाहिं।
जदपि सून धरतो तदपि तेहि सँग मैत्री नाहिं॥

—:०:—

उदर

[१४६]

अस्यदग्धोदरस्यार्थे किं न कुर्वन्ति पण्डिताः।
वानरीमिव वाग्देवीं नर्तयन्ति गृहे गृहे॥

यहि हतभागे उदर हित बुधहूं चरत अकाज।
बनरी सम निज सुरसती नचवावहिं तजि लाज॥

[१४७]

किमकारि न कार्पण्यं कस्यालङ्घि न देहली।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे किमनाटि न नाटकम्॥

काहि कृपिनता नहिं कियो केहि देहरी नहिं चीन्हि।
यहि हतभागे पेटहित को नाटक नहिं कीन्हि॥

[१४८]

यदसत्यंवदेन्मर्त्यो यद् वाऽसेव्यं च सेवते।
यद् गच्छति विदेशं च तत्सर्वमुदरार्थकम्॥

जो असेव्य सेवइ मनुज, बोलइ झूठ जो नित्त।
जो परदेस बिकान फिरि, सो सब उदर निमित्त॥

—:०:—

माता

[१४९]

पुत्रपौत्रप्रपन्नोऽपि जननीं यः समाश्रितः।
अपि वर्षशतस्यान्ते स द्विहायनवच्चरेत्॥

पुत्रपौत्रसम्पन्न नर दिरघ आयु किन पाइ।
सोउ बालक जिमि ब्यवहरइ निजजननी ढिग आइ॥

[१५०]

अपत्यदर्शनस्यार्थे प्राणानपि च या त्यजेत् ।
त्यजन्ति तामपि क्रूरा मातरं दारहेतवे ॥

सन्तति पावन हेतु जो प्रानहु बाजि लगाइ ।
तेहि जननिउ कँह तजइ नर क्रूर दारसँग पाइ ॥

—:०:—

पिता

[१५१]

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥

जनम दियो, उपनय कियो, बिद्या दियो बिचार ।
अन्न दियो जो भय हरयो पिता सो पाँच प्रकार ॥

[१५२]

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीयन्ति देवताः ॥

धरम, सरग, अरु परम तप एक पितहिं कँह जान ।
प्रीति पिताकर मिलइ तँह जान सुरन्ह हरखान ॥

[१५३]

पित्रा पुत्रो वयस्थोऽपि सततं वाच्य एव तु ।
यथा स्याद् गुणसंयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥

पुत्र प्रौढ बय पाइ तउ पिता सिखावइ ताहि ।
जेहि ते सुत गुन बढ़इ नित कीरति लहि मन चाहि ॥

—:०:—

पुत्र

[१५४]

कुपुत्रोऽपिभवेत् पुंसाँहृदयानन्दकारकः ।
दुर्विनीतः कुरुपोऽपि मूर्खोऽपिव्यसनी खलः ॥

ब्यसनी, मूढ़ कुरूप, खल दुरबिनीत किन होइ ।
हिय आनन्द बढ़ावई पूत कुपूतहु जोइ ॥

[१५५]

दिग्वाससं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्याधिका हि पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ।।

जटिल, न ब्रीडा, दिग्बसन, धूलिधूसरित गात ।
पुन्यबन्त ही देखईं सिवसम निज तनुजात ।।

[१५६]

किं मृष्टं सुतवचनं मृष्टतरं किं तदेव सुतवचनम् ।
मृष्टान्मृष्टतमं किं श्रुतिपरिपक्वं तदेव सुतवचनम् ।।

मधुर मधुरतर मधुरतम जग एकहि सुत बैन ।
स्रवनरन्ध्रसों हियअवधि दिब्य सरगसुख दैन ।।

[१५७]

पुण्ये तीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ।
तस्य पुत्रो भवेद् वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः ।।

अवसि जो दुस्कर तप कियो कहुँ तीरथ महुँ जाइ ।
सो समृद्ध धार्मिक सुधी बसबरती सुत पाइ ।।

[१५८]

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च ।।

एकइ सुत गुणवान भल मूरख नाँहि हजार ।
एक चन्द तम दूर करि नहिं उडुगन-परिवार ।।

[१५९]

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
सहैव दशभिः पुत्रैः भारं वहति रासभी ।।

सिंही एक सपूत जनि निरभय सोवइ जागि ।
दस पूतन सँग रासभी ढोवइ भार अभागि ।।

[१६०]

किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः॥

धेनु न जनइ न दूध देइ काह प्रयोजन आइ।
नहिं बिद्या नहिं धरम जेहि पूत को अरथ बनाइ॥

[१६१]

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नान्यं कथञ्चन॥

जग बिच नर नहिं सहि सकइ निज सम केहुकर बित्त।
चाहइ अपनेहुँतें अधिक किन्तु गुनी सुत नित्त॥

[१६२]

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम्।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा॥

गुरु ज्ञानी निज ज्ञानकर मरम न सबहिं बताइ।
केवल सुत प्रिय सिस्य वा दुइ कहँ देइ जनाइ॥

—:o:—

दैव

[१६३]

दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।
समुद्रमथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम्॥

भागि लिखो फल मिलि, न किछु बिद्या पौरुस लाइ।
सिन्धुमथन ते हरि रमा, हर बिस दारुन पाइ॥

[१६४]

अप्रार्थितं यथा दुःखं तथा सुखमपि स्वयम्।
प्राणिनं प्रतिपद्येत सर्वं नियतियन्त्रितम्॥

बिनु माँगे दुख आइ जस, तइसइ सुखहू आइ।
दैवनियन्त्रितही मिलइ सुखदुख प्रानिहिं जाइ॥

[१६५]

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी।
शङ्खो रोदिति भिक्षार्थी फलं भाग्यानुसारतः॥

रतनाकर सागर पिता भगिनी लछिमी जासु।
संख भीखहित रोवई इहइ भागि-फल तासु॥

[१६६]

तादृशी जायते बुद्धि र्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायस्तादृश श्चैव यादृशी भवितव्यता॥

तइसइ मति होइजात तब तइसइ करि उद्योग।
तइसइ मिलइ सहाय सब जइसन भावीजोग॥

[१६७]

अवश्यंभाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥

अवसि जो होबनहार हइ होत सो बड़हुन केर।
नीलकंठ कहँ नगनपन नागसयन हरि हेर॥

[१६८]

स्वयं महेशः श्वसुरो नगेशः सखा धनेशस्तनयो गणेशः।
तथापि भिक्षाटनमेव शम्भोर्बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा॥

खुदि महेस, नगपति ससुर, धनपति मीत बखान।
सुत गनपति, तउ भीख सिव, बिधि इच्छा बलवान॥

[१६९]

असंभवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति॥

सुबरन मृग संभव नहीं तऊ विलोभे राम।
बिपति काल परि मनुजकर मतिहु होइ मलधाम॥

[१७०]

न भूतपूर्वो न च केन दृष्टः हेम्नः कुरङ्गो न कदापि वार्ता ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥

नहिं कोउ देखउ नहिं भयेउ सुबरन मृग न सुनान ।
तबउ रामतृसना, मनुजमति फिरि, छय नियरान ॥

[१७१]

यः सुन्दरस्तद्वनिता कुरूपा या सुन्दरी सा पतिरूपहीना ।
यत्रोभयं तत्र सुतस्य हानिर्यत्र त्रयं तत्र दरिद्रता च ॥

नारि कुरूपा पति सुघर, पति कुरूप बर नारि ।
उभय सुरूप त सुत नहीं, तीनउ तँह भुखमारि ॥

[१७२]

भ्रमन् वनान्ते नवमञ्जरीषु न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत् ।
सा किं न रम्या सच किन रन्ता बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥

नवकलियन बिच भ्रमि मधुप चम्पक गन्ध न लेइ ।
ई रसिया ऊ रसभरी बिधिगति मिलन न देइ ॥

[१७३]

अवश्य भव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ॥

बिधि इच्छा अतिबलवती जेहि दिसि चलि बेटोक ।
तिनका जिमि बवँडर परयौ मन पछियाइ बेरोक ॥

[१७४]

आधोरणाङ्कुशभयात् करिकुम्भयुग्मं जातं पयोधरयुगंहृदयेऽङ्गनानाम् ।
तत्रापि वल्लभनखक्षतभेदभिन्नं नैवान्यथाभवति यल्लिखितं विधात्रा ॥

करीकुम्भ तियकुचभयौं अंकुस के डर भाग ।
भालरेख नाही मिटी सहन परयो नखदाग ॥

[१७५]

शशिनि खलु कलङ्कः कण्टकं पद्मनाले युवतिकुचनिपातः पक्वता केशजाले ।
जलधिजलमपेयं पण्डिते निर्धनत्वं वयसि धनविवेको निर्विवेको विधाता ।।

इंदु कलंकी, जुवतिकुचपात, स्याम सित केस ।
बुध निरधन, खारो उदधि, विधिमति नसि निस्सेस ।।

— :o:—

वृद्ध

[१७६]

क्षुत्तृष्णाकाममात्सर्यं मरणाच्च महद्भयम् ।
पञ्चैतानि विवर्धन्ते वार्धक्ये विदुषामपि ।।

भूख, डाह, तृसना, मदन, भयप्रद मीचु विचार ।
पाइ बुढ़ाई बढ़इं ये सब मह पाँच बिकार ।।

[१७७]

अलंकरोति हि जरा राजामात्यभिषग्यतीन् ।
विडम्बयति पण्यस्त्रीमल्लगायनसेवकान् ।।

नृप, मन्त्री, जति, बैद कर जरा बढावइ मान ।
बेस्या, गायक, मल्लअरु सेवक कर अपमान ।।

[१७८]

यममिव करधृतदण्डं हरिमिव सगदं शशाङ्कमिव वक्रम् ।
शिवमिव च विरूपाक्षं जरा करोत्यकृतपुण्यमपि ।।

सगद, सदंड, सुबक्र पुनि करि पापिहुँ बिकृताच्छ ।
हरि जम ससि सिवरूप दइ सबहिं जरा अन्धाच्छ ।।

[१७९]

वदनं दशनविहीनं वाचो न परिस्फुटा गता शक्तिः ।
अव्यक्तेन्द्रियशक्तिः पुनरपि बाल्यं कृतं जरया ।।

दसनहीन मुख, छीन बल, बानी पुनि तुतलानि ।
इन्द्रिन सक्ति बिलुप्त फिरि जरा बालपन आनि ।।

[१८०]

गात्रं संकुचितंगतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि
दृष्टि र्नश्यति वर्धते वधिरता वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनै भार्या नशुश्रूषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ।।

बपु सिमट्यो, गति छीन भइ, दन्तावलि बिलगानि ।
देखि न सकि नहिं सुनि सकइ मुँह लाला टपकानि ।।
बात न मानहिं बन्धुजन तियहु न सेवन चाहि ।
हाय बृद्ध कँह सुतहु निज रिपु आचरन कराहि ।।

—:०:—

द्वितीय आनन

नीतिसूक्ति-खण्ड

[१८१]

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।
प्राप्नुयाद् बुद्ध्यवज्ञानमपमानं च शाश्वतम् ॥

अवसर बिनु जो बोलई कस न बृहस्पति होइ ।
बुद्धि - अवज्ञा पावई ज्ञानप्रतिस्ठा खोइ ॥

[१८२]

किं कुलेन विशालेन शीलमेवात्र कारणम् ।
कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥

हेतु बड़प्पन सील निज नहिं कुल कितहुँ बिसाल ।
किमि न सुगन्धि सुकुसुम महँ जनमि कीट बिसपाल ॥

[१८३]

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं वाक्पारुष्याच्चापकारोऽपि नेष्टः ।
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं को वा लोके गर्दभस्यापराधः ॥

मधुर बचन लगि प्रिय सबहिं कररवहु घातुक ब्याध ।
को कोकिल उपहार किय को गरदभ अपराध ॥

[१८४]

किञ्चिदाश्रयसंयोगाद् धत्ते शोभामसाध्वपि ।
कान्ताविलोचने न्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ॥

स्थान उचित लहि सोहई वस्तु सो जदपि असाधु ।
कालो अंजन कामिनीनयननि लगि जिमि साधु ॥

[१८५]

राजा कुलवधू विप्रा मन्त्रिणश्च पयोधराः।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः॥

राजा मन्त्री कुलबधू बिप्र पयोधर केस।
स्थानभ्रस्ट सोहइँ न कोउ नर, नख, दन्त बिसेस॥

[१८६]

अश्वः शस्त्रंशास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्ति योग्या अयोग्याश्च॥

सस्त्र सास्त्र बीना तुरग सेवक बानी दार।
होवइं जोगि अजोगि तस जस तिन्ह धारनहार॥

[१८७]

यदि रामा यदि रमा यदितनयो विनयधीगुणोपेतः।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्॥

जदि रामा, जदिरमा, सुत बिद्यानयगुनसोभि।
तनयतनयहूँ लाभ जदि सुरवरपुर को लोभि॥

[१८८]

न विप्रपादोदकपङ्किलानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥

बिप्रचरनजलपंक नहिं बेदसास्त्रधुनि नाहिं।
स्वाहा स्वधा न सुनिय जहँ घर मसान कहि ताहिं॥

[१८९]

शय्या वस्त्रं चन्दनं चारुहास्यं वीणा वाणी सुन्दरी या च नारी।
न भ्राजन्ते क्षुत्पिपासातुराणां सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः॥

सज्जा चन्दन बसन सुभ बीना बानी जोइ।
भूखेंहि किछुन सुहाइ जग रोटी हित सब होइ॥

[१६०]

कष्टं खलु मूर्खत्वं कष्टं खलु यौवनेषु दारिद्र्यम् ।
कष्टादपिकष्टतरं परगृहवासः परान्नं च ।।

दुख मूरखता जगत् मंह बिनु धन जौवन दूख ।
परगृहबास परान्न पुनि दुखहूँते बड़ दूख ।।

[१६१]

भूशय्या ब्रह्मचर्यंच कृशत्वं लघुभोजनम् ।
सेवकस्य यतेर्यद्वद् विशेषः पापधर्मजः ।।

ब्रह्मचर्ज अरु भूसयन कृसता लघुआहार ।
जति-सेवक कहँ एक बस पुन्नि पाप अधिकार ।।

[१६२]

परान्नेन मुखं दग्धं हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
परस्त्रीभिर्मनो दग्धं कुतः शापः कलौयुगे ।।

जरचौ परायो अन्न मुख परधन गहि जरि पानि ।
परनारी सँग मन जरचो सापको कलिजुग जानि ।।

[१६३]

बिडौजाः पुरा पृष्टवान् पद्मयोनिं धरित्रीतले सारभूतं किमस्ति ।
चतुर्भिर्मुखैरित्यवोचद् विरञ्चिस्तमाखुस्तमाखुस्तमाखुस्तमाखुः ।।

इन्द्र पुरा पूँछेउ बिधिहिं को भूतलको सार ।
नाम तमाखू एक संग लीन्हचौ बिधिमुखचार ।।

[१६४]

अतिव्ययोऽनपेक्षा च तथार्जनमधर्मतः ।
मोक्षणं दूरसंस्थानं कोषव्यसनमुच्यते ।।

अतिव्यय अरजन पापतें, भावउपेच्छा, छूटि ।
दूरबसब, ये सब करइं बित्तकोस कर टूटि ।।

[१६५]

अविवेकिनि भूपाले नश्यन्ति गुणिनां गुणाः ।
प्रवासरसिके कान्ते यथा साध्व्याः स्तनोन्नतिः ।।

नृपति बिवेकबिहीन जदि होइ गुनीगुननास ।
पति परदेसिहिं सतीकुच उठइंत कौने आस ।।

[१६६]

सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान् दृष्ट्वौपायैर्वशीकृतान् ।
राजेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम् ।।

नाग, बाघ, गज, सिंहहू करि उपाय बसि आन ।
सावधान धीमान् कहँ राजा कितनो मान ।।

[१६७]

विश्वासः सम्पदां मूलं तेन यूथपति र्गजः ।
सिंहो मृगाधिपत्येऽपि न मृगैरुपयुज्यते ।।

जेहिं पर जन बिस्वास करि सुख सम्पति तेहि जाग ।
जूथ जूथपहिं देहिं सुख, मृग मृगेन्द्र डर भाग ।।

[१६८]

जृम्भां निष्ठीवनं क्रौर्यं कोपं पर्यङ्किकाश्रयम् ।
भृकुटिं वातमुद्रां च तत्समीपे विवर्जयेत् ।।

जम्हुआई मुखकूरता, थूक, क्रोध, पजँक ।
भृकुटि, झूठ निज स्वामिढिग बरजि रहिय निस्संक ।।

[१६९]

यदि तव हृदयं विद्वन् सुनयं स्वप्नेऽपिमास्म सेविष्ठाः ।
सचिवजितं षण्ढजितं युवतिजितं चैत्र राजानम् ।।

जदि सुनीति जानहु सखे कबहुँ न सेवेहु तीन ।
सचिव-नपुंसक-जुवति-बस राजा बुद्धिमलीन ।।

[२००]

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न शठा न च मायिनः ।
न च लोकरवाद् भीता न च शश्वत्प्रतीक्षिणः ॥

मायावी, सठ, आलसी, लोकबादभय भीत ।
सदाप्रतीच्छारत मनुज, पावइं सिद्धि न मीत ॥

[२०१]

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः ।
केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः ॥

किछु नासे अज्ञानबस, किछु प्रमादबस नस्ट ।
किछु पुनि ज्ञानघमंडबस, किछु नस्टनसँग नस्ट ॥

[२०२]

वरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवाद्विभवादिह ।
कृशताऽमिमता देहे पीनता न तु शोफतः ॥

अन्यायार्जित बित्ततें भली गरीबी भाय ।
कृसता भल निज देह की सोथमुटापा नाय ॥

[२०३]

अजायुद्धम् ऋषिश्राद्धं प्रभाते मेघडम्बरम् ।
दम्पत्योः कलहश्चैव परिणामे न किञ्चन ॥

अजाजुद्ध ऋसिसाद्ध, नभ भोर मेघमड़रान ।
दम्पतिकलह, न फल किछू, इन चारिहुँकर जान ॥

[२०४]

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥

बित्तनास चितताप निज गृहकुकरम जो होइ ।
बंचन अरु अपमान सब मनहीं राखिय गोइ ॥

[२०५]

घटं भिन्दद्यात् पटं छिन्दद्यात् कुर्याद् रासभरोहणम् ।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥

घट फोरइ, पट फारि पुनि चढ़ि गरदभ तजि लाज ।
लहन हेतु परसिद्धि नर गिनइ न काज अकाज ॥

[२०६]

उत्तमा आत्मना ख्याताः पितुः ख्यातास्तु मध्यमाः ।
अधमा मातुलात् ख्याताः श्वसुराच्चाधमाधमाः ॥

उत्तम स्वगुन प्रसिद्धि लहिं, मध्यम पितु गुन जानि ।
मातुल अधम, ससुरगुन अधमाधमहिं बखानि ॥

[२०७]

तीव्रे तपसि लीनाना मिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठं कण्ठे जग्राह मेनकाम् ॥

तीव्र तपस नित लीन तउ इन्द्रिन करि न परतीति ।
बिस्वामित्रहु मेनकहिं लखि तजि धीरज-रीति ॥

[२०८]

वर्जयेदिन्द्रियजयी निर्जने जननीमपि ।
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः शम्बरस्त्रिया ॥

निरजनमँह इन्द्रियजयी बरजइ जननिहुँ संग ।
पालि प्रद्युम्नहिं पुत्र जिमि रति कहं भो चितभंग ॥

[२०९]

आत्मबुद्धिः सुखायैव गुरुबुद्धिर्विशेषतः ।
परबुद्धि विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयावहा ॥

निजबुधि सब सुख देइ जग, गुरुबुधि सब हित खानि ।
परबुधि कारन नास कर, तियबुधि प्रलयबखानि ॥

[२१०]

पञ्चभिः कामिता कुन्ती तद्वधूरपि पञ्चभिः ।
सतीं वदति लोकोऽयं यशः पुण्यैरवाप्यते ।।

कुन्तिहिं भोगेउ पाँच जन पाँचालिहुँ पुनि पाँच ।
सती बखानइ लोक तेहिं पुन्नि ते जसु मिलि साँच ।।

[२११]

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्ति र्वरस्त्रियः ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।।

भोज्यरु भोजनसक्ति रति-सक्ति सुलभ बर नारि ।
दानबुद्धि अरु बिभव नर पावहिं करि तप भारि ।।

[२१२]

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ।।

मूढ, दरिद्र, प्रवासरत, नितसेवक, धृतब्याधि ।
ब्यास कहेउ इन पाँचकर जीवन मृत्यु उपाधि ।।

[२१३]

अकृतोपद्रवः कश्चिन्नमहानपि पूज्यते ।
अर्चयन्ति नरा नागं न तार्क्ष्यं न गजादिकम् ।।

किये उपद्रवबिनु कोऊ पूजि न कितिक महान ।
पूजिय नाग न गरुड गज जग सब स्वार्थ बिकान ।।

[२१४]

ब्राह्मणा गणका वेश्याः सारमेयाश्च कुक्कुटाः ।
दृष्टेष्वन्येषु कुप्यन्ति न जाने तस्य कारणम् ।।

बाँभन, बेस्या, जोतिसी, कूकुर, कुक्कुट कोइ ।
देखि जाति निज कोपकरि, कारन होइ न होइ ।।

[२१५]

अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीह यत् पुरा।
तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥

माँगत जाचक सनकह्यौ प्रथमहिं नहिं नहिं जोइ।
देहि देहि बिपरीत तोहि मिल्यो सो अच्छर दोइ॥

[२१६]

अश्वंनैवगजंनैव व्याघ्रंनैवच नैवच।
अजापुत्रं बलिं दद्याद् देवो दुर्बलघातकः॥

बीग न, बाघ न, नाग नहिं करिय देवबलि भेंट।
अजापुत्र केवल बधहिं दैवहु दुबलमेटि॥

[२१७]

दुर्मन्त्री राज्यनाशाय ग्रामनाशाय कुञ्जरः।
श्यालको गृहनाशाय सर्वनाशाय मातुलः॥

नासइ राजि कुमन्त्रि, गज नासइ ग्राम अखर्व।
गृह नासइ स्यालक अधम मातुल नासइ सर्ब॥

[२१८]

उद्योगः कलहः कण्डूर्द्यूतं मद्यं परस्त्रियः।
आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तुविवर्धते॥

कलह, कंडु, उद्योग अरु द्यूत, मद्य, परनार।
मैथुन, नोद, अहार ये सेवत बढइं अपार॥

[२१९]

सप्तैतानि न पूर्यन्ते पूर्यमाणान्यनेकशः।
ब्राह्मणोऽग्निर्यमो राजा पयोधिरुदरंगृहम्॥

जम, नृप, अगिनि, पयोधि, गृह, उदरहु बाभनलोग।
इन्ह सातन कँह काहुबिधि कोउ नहिं पूरन जोग॥

[२२०]

शूराश्च कृतविद्याश्च रूपवत्य श्च योषितः।
यत्र यत्र गमिष्यन्ति तत्रतत्र कृतादराः॥

पंडित, सूर, गुनीनर, रूपवती जो नार।
जहँ-जहँ जाइँ तहाँ तहँ पावहिं आदर प्यार॥

[२२१]

चत्वारो धनदायादाः धर्माग्निनृपतस्कराः।
तेषां ज्येष्ठाबमानेन त्रयः कुप्यन्ति बान्धवाः॥

धरम, अगिनि, नृप, तस्करहु चारि बित्तदायाद।
जंह अपमानित जेठ तँह तीनहुँ जनहिँ बिखाद॥

[२२२]

उपभोक्तुं न जानाति श्रियं प्राप्यापि मानवः।
आकण्ठजलमग्नोऽपि श्वा लिहत्येव जिह्वया॥

सम्पतिहू लहि नहिं करइ भोग अभागो काहु।
डूबि कंठ लगि नीर मझि कूकुर चाटइ चाहु॥

[२२३]

आलस्योपहता बिद्या परहस्तगताः स्त्रियः।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं, हतं सैन्यमनायकम्॥

आलसतें बिद्या नसी, नारि नासि परहाथ।
खेत नासि कम बीज तें, सेन नासि बिनुनाथ॥

[२२४]

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणपः कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः॥

एकहि बस्तु दिखात सोइ जेहि रुचि दरसक पास।
जोगिहिं भोगिहिं, कूकुरहिं कुणप कामिनी मांस॥

[२२५]

मनो मधुकरो मेघो मानिनी मदनो मरुत् ।
मा मनो मर्कटो मत्स्यो मकारा दश चञ्चलाः ।।

मीन, मानिनी, मधुप, मन, मेघ, मरुत, मद देखि ।
दस मकार मरकट, मदन, मा, चंचल कबि लेखि ।।

[२२६]

विशाखान्ता गता मेघाः प्रसूतान्तं च यौवनम् ।
प्रणामान्तः सतां कोपो याचनान्तं हि गौरवम् ।।

मेघ बिसाखानखत तक जौवन प्रसब प्रजन्त ।
सज्जनकोप प्रनाम तक जाचत गौरव-अन्त ।।

[२२७]

आज्ञामात्रफलं राज्यं ब्रह्मचर्यफलं तपः ।
परिज्ञानफलं विद्या दत्तभुक्तफलं धनम् ।।

ब्रह्मचर्ज तपफल कह्यौ, राजि को आज्ञामान ।
बिद्याफल परिबोध हिय, धनफल भोग रु दान ।।

[२२८]

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमौषधमैथुने ।
दानं मानापमानौ च नव गोप्यानि कारयेत् ।।

आयु, बित्त, गृह-दोस निज, मैथुन, ओखधि, दान ।
मन्त्र, मान, अपमान नव गुपुत रखे कल्यान ।।

[२२९]

संभ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।
विनयो वंश माख्याति देशमाख्याति माषितम् ।।

संभ्रम नेह जनावई देह जनावइ खान ।
बिनय जनावइ बंस निज बोलते देस-प्रमान ।।

[२३०]

अतिथि र्बालकः पत्नी जननी जनकस्तथा ।
पञ्चैते गृहिणः पोष्या इतरे च स्वशक्तितः ।।

मातु पिता बालक अतिथि पतिनी ये जो पाँच ।
गृही पोसियत इन प्रथम पुनि औरहिं मन राँच ।।

[२३१]

एकस्तपी द्विरध्यायी त्रिभिर्गीतं चतुष्पथम् ।
सप्त पञ्च कृषीणां च संग्रामो बहुभिर्जनैः ।।

तपहिं एक, अध्ययन दुइ, गीत तीन, पथ चार ।
सात-पाँच कृसिकरम मँह, बहुजन जुद्ध पचार ।।

[२३२]

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्येरँश्चत्वारः सहजा गुणाः ।।

प्रिय बोलब, उचितज्ञता, धैर्ज, दातृता चार ।
नहिं अभ्यास किये मिलहिं, ये गुन सहज बिचार ।।

[२३३]

दूरस्थाः पर्वता रम्याः, वेश्या च मुखमण्डने ।
युद्धस्य वार्ता रम्या च, त्रीणि रम्याणि दूरतः ।।

जुद्धबृत्त, पर्बत सुघड़, बेस्या मुख कमनीय ।
ये तीनहुँ सुन्दर लगइँ दूरहिं ते रमनीय ।।

[२३४]

अहेखि गणाद् भीतः परान्नाच्च विषादिव ।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ।।

जनगोस्ठी अहि-कुण्डली, मन परान्न बिस मान ।
तियहि पिसाची समुझि डरि, बिद्या लहहिं सुजान ।।

[२३५]

पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः ।
सा मतिः सर्वदा चेत् स्यात् को न मुच्येत बन्धनात् ।।

सुनि पुरान, समसान फिरि, मैथुन करि अवसान ।
जो मति जागै जदि टिकै को न लहै निरबान ।।

[२३६]

शम्भुः श्वेतार्कपुष्पेण चन्द्रमा वस्त्रतन्तुना ।
अच्युतः स्मृतिमात्रेण साधवः करसम्पुटैः ।।

सेत मदारहि फूल सिव, वस्त्रसूत लहिं चन्द ।
सुमिरन ही सों हरि, सुजन कर जोरे सानन्द ।।

[२३७]

मौनं कालविलम्बश्च प्रयाणं भूमिदर्शनम् ।
भृकुट्यन्यमुखी वार्ता, नकारः षड्विधः स्मृतः ।।

मौन, अधोमुख, अन्य मुख, भृकुटि किये बतियाइ ।
मिलि बिलम्ब, वापस तुरत, छवहु नकार कहाइ ।।

[२३८]

विद्यया सह मर्तव्यं कुशिष्याय न दापयेत् ।
तथापि दीयते विद्या, पश्चात् संजायते रिपुः ।।

बिद्या सँग मरिबो भलो, नाहिं कुसिस्य पढ़ाइ ।
जदपि पढ़ाइ कुसिस्य हीं, सोइ पुनि रिपु बनिजाइ ।।

[२३९]

पादेन क्रम्यते पन्था मानहीनं च भोजनम् ।
अविवेकिप्रभोः सेवा, पातकं किमतः परम् ।।

पन्थ पयादेहि चलब नित, भोजन करि बिनु मान ।
सेइ स्वामि अबिबेकिहीं, पाप न बड़ कोउ आन ।।

[२४०]

प्रत्यक्षे गुरवः स्तुत्याः परोक्षे मित्रबान्धवाः ।
कर्मान्ते दासभृत्याश्च पुत्रा नैव च नैव च ॥

गुरु परतच्छ सराहिये, सुहृद्‌सुबन्धु परोच्छ ।
दास भृत्य कर्मन्ति, सुत नहिं परतच्छ परोच्छ ॥

[२४१]

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥

राजकुमारनसों बिनय, पंडित सों सुभ उक्ति ।
झूठ जुवारिनसों सिखिय स्त्रीसों सीखिय धुत्ति ॥

[२४२]

नवं वस्त्रं नवं छत्रं नव्या स्त्री नूतनं गृहम् ।
सर्वत्र नूतनं शस्तं सेवकान्ने पुरातने ॥

बस्त्र छत्र गृह नूतनहिं, नारिहु नवल बखान ।
सब नूतनहिं सराहियत, सेवक अन्न पुरान ॥

[२४३]

वृद्धस्य वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते ।
सर्वत्रैवं विचारेण नाहारे न च मैथुने ॥

बचन बृद्धकर मानियत, आपतकाल बिसेस ।
भोजन - मैथुन छोड़ि पुनि करिय बिचार न सेस ॥

[२४४]

गणेशः स्तौति मार्जारं स्ववाहस्याभिरक्षणे ।
महानपि प्रसंगेन नीचं सेवितुमिच्छति ॥

बिनवइ ओतु गनेस निज बाहन रच्छा काज ।
स्वारथबिबस महानहू सेइ नीच तजि लाज ॥

[२४५]

श्यामा मन्थरगामिन्यः पीनोन्नतपयोधराः ।
महिष्यश्च महिष्यश्च सन्ति पुण्यवतां गृहे ।।

स्यामा मन्थरगामिनी पीन पयोधरभोग ।
महिसी महिसी पावईं पुन्यवन्तही लोग ।।

[२४६]

अग्निहोत्रं गृहं क्षेत्रं मित्रं भार्यां सुतं शिशुम् ।
रिक्तपाणिर्न पश्येच्च राजानं देवतां गुरुम् ।।

अग्निहोम, गृह, खेत, सुत, सिसु, भार्जा, नृप, मीत ।
खाली हाथ न मिलिय इन्ह गुरु, सुर यहि भलि रीत ।।

[२४७]

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु नैव च कर्तव्यः दाने तपसि पाठने ।।

भलि तीनहिं सन्तोस निज दारा भोजन बित्त ।
अध्यापन, तप, दान, मँह भलि सन्तोस न मित्त ।।

[२४८]

वस्त्रहीनस्त्वलंकारो घृतहीनं च भोजनम् ।
स्तनहीना च या नारी विद्याहीनं च जीवनम् ।।

बसनहीन भूसन नहीं, भोजन नहिं घृतहीन ।
स्तन बिनु सोह न सुन्दरी, जीवन विद्याहीन ।।

[२४९]

दुर्बलस्य बलं राजा बालानां रोदनं बलम् ।
बलं मूर्खस्य मौनित्वं चौराणामनृतं बलम् ।।

राजा बल दुर्बलन कर, मौन मूर्खबल जानि ।
रोदन बल बालकन कर झूठ चोर बल मानि ।।

[२५०]

शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धाः बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥

सूख मांस, बूढ़ी तिया, कन्यारबि, दधि काँच।
प्रातहु मैथुन नींद पुनि, जिउलेवा छहुँ साँच ॥

[२५१]

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान् ।
तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्रस्थापयेद्बुधः ॥

घिउ-घट सरिस जुवति, नर तपत अंगार समान ।
दुहुँ एकत्र न राखियत, जलत न देर बखान ॥

[२५२]

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥

जो चाहइ उतकरस नर तजइ दोस छहु बींदि।
दीर्घसूत्रता, क्रोध, भय, आलस, तन्द्रा, नींदि ॥

[२५३]

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति ॥

भूख, ब्याधि, पर्बतपतन, जल, बिस, सस्त्र रु आगि।
ब्याज निमित्त बनाइ कोउ जीव देह करि त्यागि ॥

[२५४]

दोषभीतेरनारम्भस्तत्कापुरुषलक्षणम् ।
कैरजीर्णभयाद्भ्रातर्भोजनं परिहीयते ॥

दोसभीति कारज तजब सो कापुरुस-निसान।
कौन अजीरन भय कहहु भोजन तजत दिखान ॥

[२५५]

कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः ।
अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः ॥

जो प्रिय सो प्रियही रहइ करतउ अनइस पूरि ।
दोस भरो यहि देह तउ जग केहि प्रिय नहिं भूरि ॥

[२५६]

नदीनां च कुलानां च मुनीनां च महात्मनाम् ।
परीक्षा न प्रकर्तव्या स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥

कुलन्ह, नदीन्ह, मुनीन्ह कर तियदुस्चरितहुँ केरि ।
पुरुस महात्मन केर नहिं करिय परीच्छा हेरि ॥

[२५७]

कन्या वरयते रूपं माता वित्तंपिता श्रुतम् ।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्ठान्नमितरे जनाः ॥

कन्या रूप बरइ, पिता गुन, माता बहु बित्त ।
कुल बिसुद्धि बाँधव बरइँ, बरइँ मिठाई हित्त ॥

[२५८]

विद्यया विनयावाप्तिः साचेदविनयावहा ।
किं कुर्मः कं प्रतिब्रूमः गरदायां स्वमातरि ॥

बिद्या सों पाइय बिनय जदि सोइ अबिनय-खानि ।
केहि सन जाइ गोहारऊँ जननिहुँ जो बिसदानि ॥

[२५९]

नाजारजः पितृद्वेषी नाजारा भर्तृवैरिणी ।
नालम्पटोऽधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः ॥

नहिं अजारज जनकरिपु नहिं पतिरिपु नछिनारि ।
मंण्डनकामि अकामि नहिं न न लम्पट अधिकारि ॥

[२६०]

गर्दभःपटहो दासी ग्रामण्यः पशवः स्त्रियः ।
दण्डेनाक्रम्य भुञ्जीयान्नते सम्मानभाजनम् ।।

दासी, रासभ, पटह, पसु, स्त्री, नापित अरु ढोल ।
इन्हहिं कड़ाईसों रखै मान संग नहि तोल ।।

[२६१]

यदपथ्यवतामायु र्यदनीतिमतां धनम् ।
तदेतत्काकतालीयं तदेतच्च घुणाक्षरम् ।।

लहइ कुपथ्थी आयु जदि, नीतपतित धन पाइ ।
जानि घुनाच्छर न्याय यहि नीति न कोउ अपनाइ ।।

[२६२]

वस्त्रं गां च बहुक्षीरां जलपात्रमुपानहौ ।
औषधं बीजमाहारं संक्रीणीत यथाप्नुयात् ।।

बीज, उपानह, बस्त्र, जल-पात्र, दुधारू गाय ।
ओखधि, भोजन मिलइ जहँ उचित खरीदि भलाय ।।

[२६३]

रागे, द्वेषे च माने च, द्रोहे पापे च कर्मणि ।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते ।।

राग, द्वेस अरु द्रोह कर मान पाप कर जोइ ।
अप्रिय पुनि जो करम तिन्ह देर किये हित होइ ।।

[२६४]

शाखामृगस्य शाखायाः शाखाँ गन्तुं पराक्रमः ।
उल्लङ्घितो यदम्भोधिः प्रभावः प्रभुवोहि सः ।।

साखामृग-सामरथ बस साखा-साखा दौर ।
सागर जो लंघन कियो प्रभु प्रभावसो और ।।

[२६५]

अशक्तः सततं साधुः कुरूपा च पतिव्रता।
व्याधितो देवभक्तश्च निर्धना ब्रह्मचारिणः॥
जो असक्त सो साधु नित, पतिबर्ता जो कुरूप।
देवभगत रोगी जोई, निरधन तापस रूप॥

[२६६]

वाहितं चाश्ववाणिज्यं राजसेवा तपोवनम्।
धीराश्चत्वारि कुर्वन्ति कृषिं कुर्वन्ति कातराः॥
बाहित, बानिज, नौकरी अथवा तपोबिधान।
धीर चारि मँह करइँ किछु, कादर बनइं किसान॥

[२६७]

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तु विनश्यति॥
जो अधरम करि धन लह्यौ सो दस बरिस टिकाइ।
पाइ एकादस बरिस पुनि सोइ समूल विनसाइ॥

[२६८]

मनसैव कृतं पापं न शरीरकृतं कृतम्।
येनैवालिङ्गिता कान्ता तेनैवालिङ्गितासुता॥
पाप मनहिं सो होत है नहिं सरीर सों होइ।
आलिंगइ जाया जोई पुत्रिहुँ काया सोइ॥

[२६९]

हस्ती चाङ्कुशहस्तेन कशाहस्तेन वाजिनः।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः॥
हाथी अंकुस हाथ रखि, कसा हाथ रखि घोड़।
स्रिंगी हाथ लगुड रखि, खड्ग तें दुरमुख तोड़॥

[२७०]

देशानुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः ।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः ।।

देस छोड़ि चलि जात हैं सुपुरुस, सिंह, करीस ।
अनत न जाहिं मरहिं उहीं कुपुरुस, काक, मृगीस ।।

[२७१]

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु भोजनवृत्तिषु ।
अतृप्ता मानवाः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ।।

जीवन, भोजन, बित्त अरु दारहुँ लागि बेहाल ।
मनुज अतृप्त रहे, रहइँ, रहिहइँ तीनहुँ काल ।।

[२७२]

स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते ।
मुक्तारत्नस्य शाणाश्मघर्षणं नोपयुज्यते ।।

सुन्दर बस्तु सुभाव से नहिं चाहइ संस्कार ।
मुक्ताफल कहुँ सान पर घरसन किये सुधार ?

[२७३]

निजाशयवदाभाति पुंसांचित्ते पराशयः ।
प्रतिमा मुखचन्द्रस्य कृपाणे याति दीर्घताम् ।।

निज चित भाव सरूप ही प्रतिबिम्बित पर रूप ।
मुख ससि जथा कृपान बिच लम्बो दिखइ कुरूप ।।

[२७४]

यत एवागतोदोषस्तत एव निवर्तते ।
अग्निदग्धस्य विस्फोटशान्तिः स्यादग्निना ध्रुवम् ।।

जँह सो आयो दोस जो जाय तहीं सो धोय ।
अग्निदाह-बिस्फोट जिमि सान्त अगिनि सों होय ।।

[२७५]

सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्ये प्रियासु नारीषु।
स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं जनः सुखी भवति ॥

प्रिय पतिनी, सेवक गुनी, मीत अभिन्न अदोस।
स्वामी समरथ सन मनुज कहि दुख पावइ तोस ॥

[२७६]

वित्तं परमितमधिकव्ययशीलं पुरुषमाकुलीकुरुते।
उनांशुक मिव पीनस्तनजघनायाः कुलीनायाः ॥

थोर आय व्यय अधिक जदिकसन चित्त अकुलाय।
लघु अंसुक सों ढाकि बपु जिमि कुलबधू लजाय ॥

[२७७]

दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

दधि, सक्कर, द्राक्षा, सुधा, मधु सब मधुर बखानि।
जाकी रुचि जेहि महँ रहइ मधुर सो तेहि पहिचानि ॥

[२७८]

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं, सर्पेक्षान्तिः, स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं, मद्यपे तत्त्वचिन्ता, राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥

सौच, सत्य, मैत्री, छिमा, कामसान्ति नहिं पाइ।
काक, जुआरी, नृप, भुजंग अरु कामिनी कहाइ ॥

[२७९]

मांसं मृगाणां दशनौ गजानां मृगद्विषां चर्म फलं द्रुमाणाम्।
स्त्रीणां सुरूपं च नृणां हिरण्यमेते गुणा वैरकरा भवन्ति ॥

मृगहिं मांस, दुइ दसन गज, सिंह चर्म, फल रूख।
रूप कामिनिहिं, नरहिं धन बैर करावइँ दूख ॥

[२८०]

द्वारि प्रविष्टः सहसा ततः किं दृष्टः प्रभुः स्मेरमुखस्ततः किम् ।
कथाः श्रुताः श्रोत्ररसास्ततः किं व्यथा न शान्ता यदि जाठरीयाः ॥

पाइ प्रबेस प्रभुहिं ढिग मिल्यौ हँसत बतियात ।
व्यथा मिटी नहिं जठर जदि सबहिं बृथा पतियात ॥

[२८१]

सर्पस्य रत्ने, कृपणस्य वित्ते सत्याः कुचे केसरिणश्च केसे ।
मानोन्नतानां शरणागते च मृतौ भवेदन्यकरप्रचारः ॥

केसरि-केसर, सती-कुच, कृपिन-बित्त, मनि नाग ।
मानिहिं सरनागतन पर मुयेहिं हाथ कोउ लाग ॥

[२८२]

प्रागल्भ्यहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं तथा कापुरुषस्य हस्ते ।
न तृप्तिमुत्पादयति स्वदेहे वृद्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥

बिद्या बिनु प्रागल्भ्य तिमि सस्त्र कापुरुस हाथ ।
देइ न तृप्ति स्वदेह जिमि जुवती थविरहिं साथ ॥

[२८३]

अर्थो नराणां पतिरङ्गनानां वर्षा नदीनामृतुराड्वनानाम् ।
स्वधर्मचारी नृपतिः प्रजानां गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥

बित्त नरहिं, पति अँगनहिं, पावस नदिन्ह, बसन्त ।
रूखहिं, धरमी नृप प्रजहिं पुनि पुनि जुवा करन्त ॥

[२८४]

सम्पूर्णकुम्भो न करोति शब्दमर्धोघटोघोषमुपैति नूनम् ।
विद्वान् कुलीनो न करोति गर्वं जल्पन्ति मूढास्तुगुणैर्विहीनाः ॥

भरो घड़ो नहिं सबद करि आधो घोस बहोरि ।
गरब न पंडित जन करइँ जलपहिं मूढ न थोरि ॥

[२८५]

त्रिविक्रमोऽभूदपि वामनोऽसौ स सूकरश्चेति सवै नृसिंहः।
नीचैरनीचरतिनीचनीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम् ॥

हरि बामन नरसिंह होइ लइ सूकर की ब्याधि।
नीच, अनीच, गलीचहू करि उपाय फल साधि॥

[२८६]

दरिद्रता धीरतया विराजते कुरूपता शीलतया विराजते।
कुभोजनं चोष्णतया विराजते कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते॥

सोह दरिद्री धीर जदि, सील ते सोह कुरूप।
सोह कुभोजन उखम जदि, सुभ्र कुचैल सुरूप॥

[२८७]

मात्रा समंनास्ति शरीरपोषणं चिन्तासमंनास्ति शरीरशोषणम्।
भार्यासमं नास्ति शरीरतोषणं विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम्॥

चिन्तासम सोसन नहीं, माता सम नहि पोस।
बिद्यासम भूसन नहीं, भार्जासम नहिं तोस॥

[२८८]

विना गोरसं कोरसो भोजनानां, विनागोरसंकोरसोभूपतीनाम्।
विनागोरसं कोरसः कामिनीनां विनागोरसंकोरसः पण्डितानाम्॥

भोजन, भूपति, सुन्दरी, पण्डित चारिहुँ केरि।
गोरस बिनु किछु रस नहीं बुध कहि सब जग हेरि॥

[२८९]

कस्यापिकोप्यतिशयोस्ति स तेनलोकेख्यातिं प्रयातिनहिं सर्वविदस्तु सर्वे।
किं केतकी फलति किं पनसः सुपुष्पः किं नागवल्यपि च पुष्पफलैरूपेता॥

केहूँ महँ कौनउ गुन अधिक तेहि ते ताहि सराहि।
केतकि फल, पनसहि कुसुम, नागबेलि दुहुँ नाहिँ॥

[२९०]

हंसो विभाति नलिनीदलपुञ्जमध्ये सिंहो विभाति गिरिगह्वरकन्दरासु ।
जात्यो विभाति तुरगो रणयुद्धमध्ये विद्वान् विभाति पुरुषेषु विचक्षणेषु ।।

हंस कमलिनी बिच सजइ, सिंह कन्दराबीच ।
जाति तुरग रन बीच सजि पंडित कोबिद बीच ।।

[२९१]

हंसो न भाति बलिभोजनवृन्दमध्ये गोमायुमण्डलगतो न विभाति सिंहः ।
जात्यो न भाति तुरगः खरयूथमध्ये विद्वान् न भाति पुरुषेषु निरक्षरेषु ।।

हंस न कौवन बीच सजि, सिंह सियारन बीच ।
जाति तुरग खर बीच नहिं, बुध न निरच्छर बीच ।।

[२९२]

न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन् मतिमान् नरः ।
एतदेवात्र पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद् भूरिरक्षणम् ।।

थोर हेतु नहिं बहु तजैं जे सुधीर मतिमान ।
इहै बड़ाई बुद्धि की थोर तें बहु को त्रान ।।

[२९३]

सुहृदामुपकारकारणाद्द्विषतामपकारकारणात् ।
नृपसंश्रय इष्यते बुधैर्जठरं को न बिभर्तिकेवलम् ।।

स्वजन - भलाई हेतु अरु सत्रु - खोटाई हेत ।
बुधजन राजास्रय गहँहिं, उदर न को भरि लेत ।।

[२९४]

राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्यमन्त्रिणि !
पुरोहिते प्रतीहारे सदा वर्तेत राजवत् ।।

राजमातु, रानी, कुँवर, मन्त्री, ड्योढ़ीदार ।
राजपुरोहित सन करिय राजासम ब्यवहार ।।

[२९५]

जीवेति प्रब्रुवन् प्रोक्तः कृत्याकृत्यविचक्षणः ।
करोति निर्विकल्पं यः स भवेद् राजवल्लभः ॥

सदा कहइ जय जीव जो, जानइ काज अकाज ।
कबहुँ बिकल्प करइ नहिं सो नृपप्रिय सरताज ॥

[२९६]

एरण्डभिण्डार्कनलैः प्रभूतैरपि संचितैः ।
दारुकृत्यं यथा नास्ति तथैवाज्ञैः प्रयोजनम् ॥

भिंडी, रेंड़, मदार, नड, जिमि संकलित हजार ।
दारु काज नहिं साधि, तिमि काज बड़ो न गँवार ॥

[२९७]

सदैवापद्गतो राजा भोग्यो भवति मन्त्रिणाम् ।
अतएवहिवाञ्छन्ति मन्त्रिणः सापदं नृपम् ॥

आपद पड़ो नरेस नित चाहत मन्त्री साथ ।
तेहि तें मन्त्री चाहि नित बिपद पड़ो निज नाथ ॥

[२९८]

कुलपतनं जनगर्हां बन्धनमपि जीवितव्यसन्देहम् ।
अङ्गीकरोति कुलटा सततं परपुरुषसंसक्ता ॥

लोकबाद, कुलपतन, जिउसंसय, बंधन, मीचु ।
कुलटा सँग परपुरुस के सब किछु अँगवइ नीचु ॥

[२९९]

यस्य क्षेत्रं नदीतीरे भार्या च परसंगता ।
ससर्पे च गृहे वासः कथं स्यात्तस्य निर्वृतिः ॥

नदी किनारे गेह जो, पतिनी पर नर लागि ।
बास साँपजुत सदन महँ किमि सुख लहइ अभागि ॥

[३००]

पितृपैतामहं स्थानं यो यस्यात्र जिगीषते ।
स तस्य सहजः शत्रुरुच्छेद्योऽपिप्रियेस्थितः ॥

पितापितामहभूमि जो हरइ पराई नारि ।
सहज सत्रु तेहि मानिये प्रियहु होइ तउ मारि ॥

[३०१]

वाच्यं श्रद्धासमेतस्य पृच्छतश्च विशेषतः ।
प्रोक्तं श्रद्धाविहीनस्याप्यरण्यरुदितोपमम् ॥

कहियत स्त्रद्धासहित सों पूँछइ जो मनलाइ ।
स्त्रद्धाहीनहिं कहब किछु बनरोदन होइ जाइ ॥

[३०२]

अत्यादरो भवेद् यत्र कार्यकारणवर्जितः ।
तत्र शङ्का प्रकर्तव्या परिणामेऽसुखावहा ॥

कारन बिनु अति आदरइ जो कहुँ काहू कूर ।
तँह संका करिबो उचित नाहि त फल दुख पूर ॥

[३०३]

उक्तो भवति यः पूर्वं गुणवानिति संसदि ।
न तस्य दोषोवक्तव्यः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ॥

जेहि पहिले गुणवान कहि सभामध्य कहुँ कोइ ।
तासु दोस नहि कहिय पुनि भंग प्रतिज्ञा होइ ॥

[३०४]

आदित्यस्योदयस्तात ताम्बूलं भारतीकथा ।
इष्टा मार्या सुमित्रं च अपूर्वाणि दिने दिने ॥

सूर्योदय, ताम्बूल अरु कथा भारती पीन ।
प्रिय भार्जा, सन्मित्रहू दिनदिन लागि नवीन ॥

[३०५]

नोपकारं विना प्रीतिः कथंचित् कस्यचिद्भवेत् ।
उपयाचितदानेन यतो देवा अभीष्टदाः ॥

बिनु उपकार न प्रीति कहुँ केहुकर देखी काउ ।
देवहुँ इच्छित बस्तु दइ मनबांछित फल पाउ ॥

[३०६]

नाभ्युत्थानक्रिया यत्र नालापा मधुराक्षराः ।
गुणदोषकथा नैव तत्र हर्म्ये न गम्यते ॥

नहिं उठि अगवानी करइ मधुर न मिलि बतिआइ ।
नहिं पूछइ सुख दुख कथा तेहि घर मूलि न जाइ ॥

[३०७]

गुरोः सुतां मित्रभार्यां स्वामिसेवकगेहिनीम् ।
यो गच्छति पुमांल्लोके तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥

मित्र-स्वामि-सेवक-तियहिं, गुरु-तनयहिं किय भोग ।
होइ ब्रह्मघाती अधम घोर नरक दुख जोग ॥

[३०८]

मेघच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नं च योषितः ।
किञ्चित् कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ॥

मेघछाँव जुबतीप्रिया, सिद्ध अन्न, खल प्रीति ।
धन जौवन, किछु काल ही सेइय यहि जगरीति ॥

[३०९]

यत्रोत्साहसमारम्भो यत्रालस्यविहीनता ।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम् ॥

काज करइ उत्साह भरि, आलस दूर भगाइ ।
नीति सक्ति दुहुँ जोग, तँह लछिमी अचल सहाइ ॥

[३१०]

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥

सन्तोसामृततृप्त नर जो सुख पावहिं सान्त ।
धनलोभी धावत फिरहिं सो सुख लहहिं न भ्रान्त ॥

[३११]

कुर्वन् हि वैतसीं वृत्तिं प्राप्नोति महतीं श्रियम् ।
भुजङ्गवृत्तिमापन्नो वधमर्हति केवलम् ॥

बृत्ति बैतसी अँगइ नर लहइ सम्पदा भूरि ।
बृत्ति भुजंग दिखाइ पुनि बध दुख लहि भरपूरि ॥

[३१२]

कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
काले काले च मतिमान् उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत् ॥

समय देखि कच्छपसरिससहइ समेटि प्रहार ।
पाइ समय पुनि चतुर नर करिया सों करि बार ॥

[३१३]

नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।
स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनाऽपि परिभूयते ॥

मकर गजेन्द्रहुँ करसई करि निवास निज थान ।
प्रच्चुत जदि निजथान ते ताहि परिभवइ स्वान ॥

[३१४]

वृक्षांश्छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येव गम्यते स्वर्गं नरके केन गम्यते ॥

पेड़ काटि पसु मारि बहु खून बहाइ दुरन्थ ।
सरग गमन चाहत जदि नरक जाइ को पन्थ ॥

[३१५]

कालो हि सकृदभ्येति यन्नरं कालकाङ्क्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तेन कालकर्माचिकीर्षता ॥

अवसर एकहिं बार नर पाइ बढ़ावइ भागि ।
करि प्रमाद चूकइ जदि पुनि पछिताइ अभागि ॥

[३१६]

दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ॥

रोग गरीबी दुख बहु, बन्धन बिपति न थोरि ।
किये पूर्ब अपराध कर नर फल लहइ बहोरि ॥

[३१७]

सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः ।
मम त्वकृतपुण्यस्य क्षुद्रस्यात्मापि दुर्भरः ॥

सहसपालि कोउ पालि सत, कोउ दसपालि समर्थ ।
पुन्निहीन हौं आपनो पेट पालि असमर्थ ॥

[३१८]

मानो दर्पस्त्वहंकारः कुलं पूजा च बन्धुषु ।
दासभृत्यजनेष्वाज्ञा वैधव्येन प्रणश्यति ॥

मान दरप, हंकार, कुल, पूजा बन्धुन्ह मांहि ।
आज्ञा दासजनन्ह पर बिधवा होतइ जाहि ॥

[३१९]

कुलं च शीलं च सनाथतां च विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च ।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

विद्या, कुल, बपु, सील, बय, बित्त, सहाय सँभार ।
कन्या सौंपिय देखि इन्ह सेस न करिय बिचार ॥

[३२०]

अनिष्टः कन्यकाया यो वरो रूपान्वितोऽपि सन् ।
यदि स्यात्तस्य नो देया कन्या श्रेयोऽभिवाञ्छता ।।

केतिक होइ सुरूप बर जदि कन्या नहिं चाहि ।
पिता चाहि कल्यान जो कन्या सौंपि न ताहि ।।

[३२१]

लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ।।

लोभी जस, मैत्री पिसुन, अरथपरायन धर्म ।
ब्यसनी बिद्या, कृपिन सुख, कुल नासइ दुस्कर्म ।।

[३२२]

ऋणशेषश्चाग्निशेषं शत्रुशेषं तथैवच ।
व्याधिशेषं च निःशेषं कृत्वा प्राज्ञो न सीदति ।।

अगिनि रोग रिन सत्रुकर सेस न राखिय काहि ।
इन्हहिकरिय निस्सेस बुध जो जीवनसुख चाहि ।।

[३२३]

आत्मनो मुखदोषेण बध्यन्ते शुकसारिकाः ।
बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम् ।।

बन्धन सुकसारिकहिं मिलि फल प्रिय बानी स्त्रौन ।
बकहिं न बाँधन जात कोउ सब सुखसाधक मौन ।।

[३२४]

वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद् गृहम् ।
प्रासादोऽपि तया हीनो ह्यरण्यसदृशः स्मृतः ।।

दयिता सँग तरुमूलहू गृहसमान सुखदेइ ।
बिनु दयिता प्रासादहू बन समान दुख देइ ।।

[३२५]

गगनमिवनष्टतारं शुष्कमिव सरः, श्मशानमिव रौद्रम् ।
प्रियदर्शनमपि रूक्षं भवति गृहं धनविहीनस्य ॥

तारागन बिनु गगन जिमि, सर बिनु जल जिमि जान ।
सुन्दरहू धनहीन कर सदन मसान समान ॥

[३२६]

व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना ।
कामार्तेनाथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नोनिरर्थकः ॥

ब्याधित, चिन्तागसितनर, कामी, मत्त, ससोक ।
देखहिं सपन जो वृथा सो फल न लहहिं कहुँ तोक ॥

[३२७]

सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम् ।
अभिप्राया न सिद्धयन्ति तेनेदं वर्तते जगत् ॥

साँपन कर अरु खलन कर दुष्टचित्त जन केर ।
अभिप्राय पूरहिं नहीं जगथिति तेहिं ते हेर ॥

[३२८]

न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्याद्दिव्यस्पर्शेन शोभने ।
कुस्थानेऽपि भवेत् पुंसां जन्मनो यत्र संभवः ॥

होइ कुठौरहुँ तबहुँ जो जनमभूमि सुख लाइ ।
दिब्य सरगहू पहुँचि नर सो सुख कबहुँ न पाइ ॥

[३२९]

नान्यद् गीतात् प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते ।
शुष्कस्नायुस्वराह्लादात्त्र्यक्षं जग्राह रावणः ॥

गीत ते अधिक कतहुँ किछु देवनहूँ प्रिय नाहिं ।
सूखताँतसुरमाधुरी रावन सिवहिं रिझाहिं ॥

[३३०]

सारमेयस्य चाश्वस्य रासभस्य विशेषतः।
मुहूर्तात् परतो न स्यात्प्रहारजनिता व्यथा॥

अस्व केर अरु स्वान कर रासभ केर बिसेस।
छिन ऊपर रहिजात नहिं चोटब्यथा कर सेस॥

[३३१]

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम्।
कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम्॥

कलह कुटुम कर अन्त करि कुबचन मैत्री अन्त।
दुस्ट कुसासक रास्ट्रकर कुकरम कीरति अन्त॥

[३३२]

वदनं दशनैर्हीनं लाला स्रवति नित्यशः।
न मतिः स्फुरति क्वापि बाले वृद्धे विशेषतः॥

दसनबिहीन दिखाइ मुख लाला टपकि अमानि।
बुद्धिहिं सूझि न परइ किछु बालक बूढ़ समान॥

[३३३]

न द्विषन्ति न याचन्ते परनिन्दां न कुर्वते।
अनाहूता न चायान्ति तेनाश्मानोऽपि देवताः॥

केहुसन बैर न माँगिबो, परनिन्दा नहिं टेव।
अनाहूत नहिं जाहिं कहुं एहिते पथरहु देव॥

[३३४]

आपत्सु मित्रं जानीयाद् युद्धे शूरमृणे शुचिम्।
भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान्॥

रिन शुचिता, रनसूरता, बिपति मीत पहिचानि।
भार्जा बित्तबिनास पर, बन्धु कलेसहिं जानि॥

[३३५]

पलितेषुहि दृष्टेषु पुंसः का नाम कामिता।
भैंषज्यमिव मन्यन्ते यदन्यमनसः स्त्रियः॥

पलित भयो जब केस सिर तब को कामबिकार।
उन्मन ललना तजहिं जिमि कटुकौसधि उपचार॥

[३३६]

कामः सर्वात्मना हेयः सचेद्धातुं न शक्यते।
स्वभार्यां प्रति कर्तव्यः सैव तस्यहि भेषजम्॥

सब बिधि काम तजब भलो, जदि तजि सकइ न कोइ।
निज भार्जा प्रति करइ तेहि, सही ओसधी सोइ॥

[३३७]

तपसोहि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्।
नासाध्यं तपसः किंचिदिति बुद्ध्यस्व भारत॥

तपतें बड़ो न किछु मनुज तप करि होइ महान।
नहिं असाधि किछु तप किये यहि मत भारत मान॥

[३३८]

न पुत्रधनलाभेन राज्येनापि न विन्दति।
प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात्॥

पुत्रलाभ धनलाभसों राजिहुलाभसों नाहिं।
प्रीति लहइ नर जो निरखि निज बैरिहिं दुखमाहिं॥

[३३९]

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च पाण्डवाः।
शत्रोश्च मोक्षणं क्लेशात् त्रीणि चैकं च तत्समम्॥

राजिलाभ, बरलाभ, अरु पुत्रजनम करि एक।
बैरिहिं मोचब क्लेसतें तेहि तीनहुँ सम एक॥

[३४०]

गुणाश्चषण्मितमुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलंचास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥

मितभोजी नर पावई, बल सुख आयु अरोग ।
सन्तति करहिं कुभाव नहिं पेटू कहँहिं न लोग ॥

[३४१]

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

स्रुत कुल, दान, कृतज्ञता, प्रज्ञा, दम, मितबोल ।
तथा पराक्रम आठ गुन लहि नर बनि अनमोल ॥

[३४२]

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् ।
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वाः अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥

जनइ तनय, तिन्ह उरिन करि, करि जीबिकाप्रबन्ध ।
पुत्रिहिं ब्रीहि यथेच्छ बर, बन मुनि बनु निरदंद ॥

[३४३]

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हवि ब्रह्मिणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥

फल, जल, मूल, हबिख्य, पय, भेसज बाभनचाहु ।
गुरु-आज्ञा इन आठतें ब्रत खँडित नहिं काहु ॥

[३४४]

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः ।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि ॥

मूढ डरेसि कस मरन कहँ डरेउ न छोड़इ मीचु ।
जतन करहु नहिं जनमु जिमि तजत अजातहिं नीचु ॥

[३४५]

पश्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः ।
ननिन्द्यादन्नभक्ष्यांश्च स्वादु स्वादु च भक्षयेत् ॥

दुहुँ कर-पद, मुँह धोइ करि, भोजन करिय सुजान ।
पूरब मुँह सुचि मौन होइ, अन्न बखान-बखान ॥

[३४६]

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
क्षमा चैवाप्रमादश्च यस्यैते स सुखी भवेत् ॥

रिजुता प्रानिन्ह संग, छिमा, सत्यबचन, अपमाद ।
भाव अहिंसा जासु हिय, सुख तेहि, कहुँ न बिखाद ॥

[३४७]

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य तत्त्ववित् ।
विषस्येवोद्विजेन्नित्यं संमानस्य विचक्षणः ॥

अपमानहिं अमरित समुझि सुखी तत्तविद होइ ।
बिस जानहिं संमान बरु दुखी बिचच्छन होइ ॥

[३४८]

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया ॥

राखइ सिस्नोदरहिं घृति, कर-पद राखइ आँखि ।
आँखि - कान मन राखई, मन-बच बिद्या राखि ॥

[३४९]

के वा भुवि चिकित्सन्ते रोगार्तान् मृगपक्षिणः ।
श्वापदानि दरिद्रांश्च प्रायो नार्ता भवन्तिते ॥

पसु पंछी स्वापदन्हि कर अरु दरिद्र नर केरि ।
करइ चिकित्सा जगत को इन्हहि रोग नहि घेरि ॥

[३५०]

महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसन्धिषु ।
वहन्ति शिबिकामन्ये यान्त्यन्येशिबिकागताः ।।

पावइ निज प्रारब्ध बस नर सुख दुख जग जाइ ।
सिबिका पर आरुढ इक इक सिबिका लइ जाइ ।।

[३५१]

मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम् ।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ताश्रेय एतदसंशयम् ।।

मृदुता रिजुता सबन्ह सँग, मधुरी बानी बोल ।
अपुन परमकल्यान हित यहि सम आन न तोल ।।

[३५२]

नक्तंचर्यां दिवास्वप्नमालस्यं पैशुनंमदम् ।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत् ।।

दिवास्वाप, आलस्य, मद, पैसुन, रातिपचार ।
अतिक्रम, अक्रम तजिय इन्ह दोस श्रेय-अपहार ।।

[३५३]

आत्मोत्कर्षं न मार्गेत परेषां परिनिन्दया ।
स्वगुणैरेव मार्गेत विप्रकर्षं पृथग्जनात् ।।

अपुन बड़ाई उचित नहिं करि परनिन्दा घोर ।
अपनोई गुनसों भलो ढेर बढ़ो वा थोर ।।

[३५४]

वाचोवेगं मनसः क्रोधवेगं विधित्सावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस्तंमन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिंच ।।

बानी उदरोपस्थ मन क्रोध विधित्सा केर ।
रोकइ बेग सो धीर जग सोइ मुनि पंडित हेर ।।

[३५५]

चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः ।
उपस्थमुदरं हस्तौ वाक् चतुर्थी स धर्मवित् ।।

तेहि जानिय धर्मज्ञ जग जिन्ह बस किय इन्ह चार ।
बानी, हाथ, उपस्थ, अरु दूभर उदर पसार ।।

[३५६]

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा ।
एतत्तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम् ।।

सत्य, अहिंसा, दम, दया अरु अक्रूरता पाँच ।
धीर इन्हहिं तप जानहीं झुरउब देह न आँच ।।

[३५७]

अन्तःक्रूरा वाङ्मधुरा कूपाश्छन्नास्तृणैरिव ।
धर्मवैतंसिकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् ।।

चित्त क्रूर बानी मधुर तृनाच्छन्न जिमि कूप ।
ढोंगी धर्मध्वजी जग लूटहिं धरि बहुरूप ।।

[३५८]

एक एव दमे दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ।।

दमहिं एक यहि दोस बड़ दूसर किछु न लखाइ ।
छमायुक्त जो पामरहिं साधु असक्त दिखाइ ।।

[३५९]

सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत ।
निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात् स सुखीनरः ।।

समता, अति आयास नहिं, सत्य बचन निर्बेद ।
अविधित्सा जेहि महँ बसइं सुखी सो नहिं तेहि खेद ।।

[३६०]

नित्यं क्रोधाच्छ्रियं रक्षेत्तपोरक्षेच्चमत्सरात् ।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ।।

सिरिहिं बचाइय क्रोध तें मत्सरतें तप राखि ।
ज्ञान मान-अपमान तें अपुहिं पमाद तें राखि ।।

[३६१]

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद् द्विजातिषु लक्षणम् ।।

सदाचार-सुचिता-जुत, दया प्रानि पर जोइ ।
ग्रन्थन्ह स्त्रेस्ठ द्विजातिकर लच्छन बरनेउ सोइ ।।

[३६२]

हित्वा दंभं च कामं च क्रोधं हर्षं भयं तथा ।
अप्यमित्राणि सेवस्व प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।।

काम क्रोध भय हरख तजि दंभ छोड़ि सानन्द ।
हाथ जोड़ि प्रनिपात करि रिपुहुँ सेइ निरदन्द ।।

[३६३]

शुभाशुभानि वस्तूनि सम्मुखानि शरीरिणाम् ।
प्रतिबिम्बमिवायान्ति पूर्वमेवान्तरात्मनि ।।

होनहार जो किछु प्रबल सुभ वा असुभ दुरन्त ।
परछाइँ मन पर परत प्रथमहिं ताको हन्त ।।

[३६४]

यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
नहिं कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते ।।

अवसर लहि गुन गुनीकर बिकसइ स्वयं अमन्द ।
मृगमदगन्ध न सपथ तें जानि परइ सुखकन्द ।।

[३६५]

अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद्धनम् ।
यच्च बाहुबलं भीरोर्व्यर्थमेतत्त्रयं भुवि ।।

अप्रगल्भ कर ज्ञान जो कृपिन पुरुस कर बित्त ।
भीरु पुरुस कर बाहुबल साधि न कोउ निमित्त ।।

[३६६]

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

बीच पुरान अठारहेउ ब्यासबचन दुइ आप ।
पुन्निलाभ उपकार तें परपीडन तें पाप ।।

[३६७]

सरोजसंज्ञं कुसुमं यदुच्यते तदन्यनाम्ना यदिवाभिधीयते ।
न सौरभं तस्य कदापि हीयते न नाम वस्त्वेव जनैर्महीयते ।।

नाम सरोज बिहाय जदि अउर धरिय कोउ नाम ।
कुसुमसुगन्ध उहइ रहइ बस्तु बड़ो नहिं नाम ।।

[३६८]

न जातु विस्मरेदन्यैरात्मन्युपकृतिं कृताम् ।
शतमप्युपकाराणां न स्मरेत् कृतमात्मना ।।

अन्य कियो उपकार जो एकहु बिसरि न जानि ।
आप कियो उपकार सौ भूलि न करिय बखानि ।।

[६६९]

मनुष्याणां मनुष्यत्वं विपद्येव प्रकाशते ।
सम्पत्काले पुनस्तेषां राक्षसत्वं प्रचीयते ।।

बिपत्काल लहि मनुज करि दिखइ मनुजता पूर ।
संपत पाइ बड़इ पुनि राच्छसपन अति कूर ।।

[३७०]

अनुचितकर्मारम्भः स्वजनविरोधो बलीयसा स्पर्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि ॥

कुकरम, होड़ बड़न सँग, सदा स्वजनतकरार ।
प्रमदाजनविश्वास अति मृत्युद्वार ये चार ॥

[३७१]

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्त्रं स्नानमाचरेत् ।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत् ॥

सौ बिहाय भोजन करिय सहस छोड़ि करि न्हान ।
लाख छोड़ि सुभदान करि, कोटि त्यागि हरिगान ॥

[३७२]

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् क्रुद्धमञ्जलिकर्मणा ।
मूर्खं छन्दानुरोधेन याथातथ्येन पण्डितम् ॥

लोभिहिं धन देइ बस करिय क्रोधिहिं अंजलि धारि ।
मूरख मन अनुसार करि पंडित सत्य पचारि ॥

[३७३]

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥

जल लहि तेल, रहस्य खल, सत्पात्रहुँ लहि दान ।
प्राज्ञ पाइ सुचि सास्त्र जदि थोरउ बढइ अमान ॥

[३७४]

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥

बिनु पूँछे अन्याय सों पूँछे वा नहिं बोल ।
जानतहू सब चतुर जन जड सम मुँह नहिं खोल ॥

[३७५]

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥

पथ्य करइ रोगार्त जदि को ओखधि सों काम।
पथ्य करइ रोगार्त नहिं को ओखधि सों काम ॥

[३७६]

सत्संगाद् भवतिहि साधुता खलानां साधूनां नहि खलसंगमात् खलत्वम्।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ॥

साधु संग खल साधु बनि साधु न खल बनि कोइ।
कुसुम गंध माटी हरइ कुसुम न माटी-बोइ ॥

[३७७]

अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥

होइ सविद्य अविद्य वा बिप्र देवता महान।
होइ समन्त्र अमन्त्र वा अगिनि जथा भगवान ॥

[३७८]

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
परापवादसस्येभ्यो गाश्चरन्तीर्निवारय ॥

जदि जग एकहि करम तें निज वसि राखन चाउ।
चरइ न परनिन्दा कुखो बानी धेनु बचाउ ॥

[३७९]

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ॥

सदा बचाइय चरित निज बित्त होइ बरु जाइ।
बित्त-हीन नहिं हीन किछु चरित-हीन मरिजाइ ॥

[३८०]

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥

नर अधरम करि बढ़इ पुनि मंगल काज बनाइ।
पुनि रिपु जीतइ, अन्त तु मूलसहित बिनसाइ॥

[३८१]

न नर्मयुक्तं ह्यनृतं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥

तिय समच्छ उपहास मँह अरु बिवाह-संलाप।
प्रान-कस्ट धनहरन बिच पाँच झूठ नहिं पाप॥

[३८२]

विद्या प्रवसतोमित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः॥

बिद्या मीत प्रवास मँह घर बिच भार्जा मीत।
बैद्य मीत रोगार्त कर, दान मरत कर मीत॥

[३८३]

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति चोदिताः।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः॥

कही बात पसुहूँ समुझि, हय गज हाँके जूझि।
विनहु कहे बुध ताड़ि सब, बुद्धि परेंगित बूझि॥

[३८४]

नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य वाचि क्षुरो निशितस्तीक्ष्णधारः।
तदुभयमेतद् विपरीतं क्षत्रियस्य वाङ्नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारम्॥

बिप्रहृदय नवनीतसम बानी छुरसम तीख।
छत्रिय दुहुँ बिपरीत, मन छुर, बानी मधु दीख॥

[३८५]

नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक्॥

दया, प्रानिमैत्री, मधुर बचन तथा सुचिदान।
बसीकरन जग मँह कतहुँ यहि सम दीख न आन॥

[३८६]

तस्मात्सान्त्वं सदावाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् संपूजयेद् दद्यान्न च याचेत् कदाचन॥

मधुर बचन बोलिय कबहुँ परुख न बोलिय बोल।
पूजिय पूज्य, न माँगु कहुँ, देहु सक्ति निज तोल॥

[३८७]

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवींत्यजेत्॥

तजिय एक कुल हित सुधी कुलहु ग्रामहित त्यागि।
ग्रामहु जनपद हित तजिय जगत आत्महित लागि॥

[३८८]

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत् कालस्य पर्ययः।
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि॥

रिपुहिं राखिये सीस जब समय बिरुद्ध दिखाइ।
पाइ समय अनुकूल पुनि पटकि फोरि घट ताइ॥

[३८९]

भयेन भेदयेद् भीरुं शूरमञ्जिलिकर्मणा।
लुब्धमर्थप्रदानेन समं न्यूनं तथौजसा॥

भीरुहिं फोरु दिखाइ भय सूरहिं अंजलि जोड़।
धन दइ लोभिहिं, हीन-सम बल दिखाइ पुनि तोड़॥

[३९०]

षडनर्था महाराज कच्चित्ते पृष्ठतः कृताः ।
निद्राऽऽलस्यं भयं क्रोधो मार्दवं दीर्घसूत्रता ॥

निद्रा, आलस, क्रोध, भय, मृदुता काजबिलम्ब ।
नृप अनर्थ तजि इन्हँहि छः पाइय सिद्धिकदम्ब ॥

[३९१]

यस्यां यस्यामवस्थायां यद् यत्कर्म करोति यः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समवाप्नुयात् ॥

जेहि थिति मँह जो करम जस करइ बड़ो वा छोट ।
तेहि थिति मंह सो फल लहइ भलो होइ वा खोट ॥

[३९२]

ज्ञानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः ।
वैश्यानां धान्यधनवाञ्छूद्राणामेव जन्मतः ॥

बिप्र बृद्ध निजज्ञान तें छत्रिय बल तें जान ।
बैस्य बृद्ध धन-धान्य तें सूद्र जनम तें मान ॥

[३९३]

यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलंतु बहुश्रुतः ।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी सूपरसानिव ॥

जेहि के अपुन बिबेक नँहि भूरि सास्त्र पढ़ि लीन्ह ।
सास्त्र-मरम सो जानि नँहि करछुलि रस नँहि चीन्ह ॥

[३९४]

हृतेन राज्येन तथा धनेन रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव ।
यथा त्रपाकोपसमीरितेन कृष्णाकटाक्षेण बभूव दुःखम् ॥

राजि, रतन, धन, सब लुटचौ दुख न पाण्डबन तौन ।
कृस्नाकोप-त्रपा भरे कटु-कटाच्छ-बिंधि जौन ॥

[३९५]

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
तान् सेवेत्तैः समास्याहि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ॥

बिद्या जनम सुकरम पुनि जासु तीन अवदात।
तेहि सेइय तिन्ह संगती सास्त्रहुँ ते बढ़ि जात ॥

[३९६]

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात्।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः ॥

बुद्धि नीच होइ नीच सँग मध्यम संग समान।
स्त्रेस्ठ संग उत्तम बनइ, संगति फल बलवान ॥

[३९७]

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव ॥

राजा, अगिनि, स्वजन, सलिल चोरहुँ तें भयमानि।
बित्तवान नर, प्रानि जिमि नित्य मृत्यु-भय जानि ॥

[३९८]

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमादयः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥

जज्ञ, अलोभ, छिमा, दम, सत्य, दान, स्वाध्याय।
तप, ये आठहु धरम कर मारग आठ कहाय ॥

[३९९]

तस्मान्नात्युत्सृजेत्तेजो न च नित्यंमृदुर्भवेत्।
काले कालेतुसंप्राप्ते मृदुस्तीक्ष्णोऽपि वा भवेत् ॥

सदा न अति मृदु होब भल सदा न तीखो कोह।
उचित समय अनुसार बुध मृदु वा तीखो सोह ॥

[४००]

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि ।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते ॥

क्रोधी पाप करइ नर क्रोधी गुरुजन मारि ।
क्रोधी बानी करुख कहि स्रेस्ठ जनहुँ धुत्कारि ॥

[४०१]

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणैर्विना ।
एषा हि रहिता तेन शोभमाना न शोभते ॥

नारी कर भूसन परम पति, भूसन नहिं कोउ ।
पति बिनु सबभूसनलदी नारी सोह न सोउ ॥

[४०२]

नानृजुर्नाकृतात्मा च नाविद्यो न च पापकृत् ।
स्नाति तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्नरः ॥

कुटिल न, आतमबिहीन नहिं, नहिं अबिद्य, नहिं पाप ।
कुटिलमतिहु नहिं तीर्थ महुँ स्नान करइँ कहुँ आप ॥

[४०३]

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुकर्म तत् ।
अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ॥

धरम बिरोधी धरम जो नहिं सो धरम कुपन्थ ।
बिना बिरोधे धरम कोउ जो सो धरम महन्थ ॥

[४०४]

दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथा ।
ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नयः ॥

बेद पढ्यौ नहिं पढ्यौ वा लहि संस्कार कि नाहिं ।
नहि अपमानिय बिप्र जिमि अगिनि राख की माँहि ॥

[४०५]

यथा श्मशाने दीप्तौजाः पावको नैव दुष्यति ।
एवं विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवतं महत् ।।

दिपित तेज पावक यथा नहिं मसान महँ दूसि ।
तिमि सबिद्य निरबिद्य वा दैवत ब्राह्मन भूसि ।।

[४०६]

अग्निहोत्रं वनेवासः शरीरपरिशोषणम् ।
सर्वाण्येतानि मिथ्या स्युर्यदि भावो न निर्मलः ।।

अगिनि होत्र किय, बन बसेउ, तपकरि सोखयेउ देहु ।
जदि निरमल मनभाव नहिं सब किछु मिथ्या लेहु ।।

[४०७]

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः ।
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ।।

मन, बानी, अरु बुद्धि सों करमहुँ सो जो धीर ।
पाप न करइँ, तपइँ तेइ, कृसइं न जदपि सरीर ।।

[४०८]

पापानां विद्ध्यधिष्ठानं लोभमेव द्विजोत्तम ।
लुब्धाः पापं व्यवस्यन्ति नरा नातिबहुश्रुताः ।।

पापपुंज कर मूल एक लोभहिं जानिय रोग ।
लोभी, जिन्हँहिं न ज्ञान भल, पाप करहिं तेइ लोग ।।

[४०९]

एकः सम्पन्नमश्नाति वास्ते वासश्च शोभनम् ।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ।।

उत्तम भोजन-बस्त्र बिनु दिये परिजनहिं भाग ।
भोगि अकेलइ निठुर सो परम नृसंस अभाग ।।

[४१०]

एकं हन्यान्नवा हन्यादिषुर्मुक्तोधनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम् ॥

एकहि मारइ बान जो छोड़ धनुर्धर ताक ।
बुद्धिमान कर बुद्धि पइ नासइ रास्ट्र बेबाक ॥

[४११]

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥

खाइ अकेले स्वादु नहिं, सोचि न अरथ अकेल ।
इकला मारग नहिं चलइ सोवतन्हि जगि न अकेल ॥

[४१२]

यदेनं क्षमयायुक्तमशक्तं मन्यते जनः ।
सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमंबलम् ॥

छिमाजुक्त कँह निबल जो मानहिं सो नहिं दूस ।
बल कोउ दीख न छिमासम, छिमा दूस नहिं भूस ॥

[४१३]

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।
क्षमावशीकृतिर्लोके क्षमया किन साध्यते ॥

छिमा निबल कर गुन बड़ो, भूसन सबलन लोग ।
बसोकरन जग छिमा, किमि साधि न छिमा प्रयोग ॥

[४१४]

शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥

सान्ति-खड्ग जेहि हाथ मँह दुस्ट बिगाड़इ काह ।
अगिनि परचौ जहँ तृनहिं नहिं काह करइ तँह दाह ॥

[४१५]

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥

धरम एक कल्यान बड़ छिमा सान्ति बड़ जान ।
एक अहिंसा सुखद बड़ि बिद्या तृप्ति अमान ॥

[४१६]

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥

यहि जग मँह दुइ करम नर करि त प्रतिस्ठा होइ ।
करुख बचन नहिं बोलि कहुँ पूजि न दुरजन जोइ ॥

[४१७]

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गलेबद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रंचातपस्विनम ॥

बाँधि गले बोझिल सिला दुहुँ डुबोइ जल बीच ।
धनिक न दाता होइ जो निरधन तपो न नीच ॥

[४१८]

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञाति रवसन्नः कुलीनः सखा दरिदो भगिनी चानपत्या ॥

तव गृहस्थ स्रीमन्तगृह तात बसइँ ये तीन ।
ज्ञातिबृद्ध निरधन सुहृद् भगिनि निपूती दीन ॥

[४१९]

पञ्चैव पूजयल्लोंके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान् पितृन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥

जग मँह नर जसु लहइ इन पाँच पूजि निरभ्रान्त ।
देव, पितर, मानव, अतिथि परिब्राट जो सान्त ॥

[४२०]

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा घृतिः॥

कबहुँ न नर इन छः गुनन त्यागिय स्रेय महान।
सत्य, अनालस, छिमा, धृति, अनसूया अरु दान॥

[४२१]

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्याप्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

नित्य धनागम, रोग नहिं, प्रियवादिनि प्रियदार।
विद्या धनद बसी तनय छः जग सुखकर सार॥

[४२२]

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः, सेवा, कृषि भर्या, विद्या, बृषलसंगतिः॥

बिनु देखे बिनसाइं छः तुरत न किछु सन्देह।
गौ, बिद्या, भार्जा, कृसी, सेवा, नीच-सनेह॥

[४२३, ४२४]

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥

विद्या पढ़ि आचार्य कँह, जननिहिं दार लिआइ।
काम भोगिकर तियहिं नर कारज साधि सहाइ॥
नदी पार करि तरी अरु बैदहिं रोग निवारि।
इन छः कँह अपमानि जग जदपि प्रथम उपकारि॥

[४२५]

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

रोग न, रिन न, प्रवासनहिं, सत्पुरुसन सँग प्रीति।
मन अनुकूल स्वजीविका, अभयबास, सुखरीति ॥

[४२६]

ईर्षुर्घृणी, न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥

असन्तोस, इर्सा, घृना, क्रोध, नित्य सन्देह।
अन्यभागि अवलम्ब ये छः केवल दुखगेह ॥

[४२७]

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं नदर्पमारोहति, नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥

सान्त बैर नहिं दीपई दरप न करि न गँवाइ।
बिपतिहुँ मँह न कुकाज करि आरजसील कहाइ ॥

[४२८]

न स्वे सुखेवैकुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥

अपनो सुख बहु हरस नहिं नहिं पर दुख हरसाहिं।
दइ करि पुनि अनुताप नहिं, आरजसील कहाँहि ॥

[४२९]

मितंभुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्मकृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥

बांटि आस्रितहिं भोगि मित, कर्म अमित मित स्वाप।
माँगे देइ रिपुहुँ, तेहि आत्मजयिहिं नहि पाप ॥

[४३०]

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम् ॥

प्रिय अप्रिय सुभ असुभ वा जो किछु जैसन होइ ।
जेहि कर अनभल चाहि नहि, बिनु पूछे कहि सोइ ॥

[४३१]

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगाइव ।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥

जेहिसन जग भय मानई बधिकहि जिमि मृगजात ।
सागरान्त लहि मही तउ अन्त न किछु रहि जात ॥

[४३२]

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥

इर्षा जेहि परबित्तबलरूपबंससुख केरि ।
सौभागि हु सत्कार कर तेहि कर व्याधि घनेरि ॥

[४३३]

क्षोभं प्रयाता अपि नैव सन्तो दुष्टामशिष्टांगिरमुद्गिरन्ति ।
दुष्टाः प्रसन्ना अपि शीलयुक्तां वक्तुं न जातु प्रभवन्ति वाचम् ॥

छोभ दियेउ नहि संत कहुँ बचन असिस्ट उचारि ।
दुरजन होइ प्रसन्न तउ बचन सुसील न धारि ॥

[४३४]

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥

सदा सेइ उत्तम पुरुस मध्यम हूँ जदि गाह ।
अधमहिं कबहुँ न सेइये जो उन्नति निज चाह ॥

[४३५]

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्तिधर्मस्यातिक्रमेण च॥

तजि इज्या, कुबिबाह करि, बेदाध्ययन उजासि।
धरम छोड़ि अधरम बरति कुलमर्जाद बिनासि॥

[४३६]

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्तिब्राह्मणातिक्रमेण च॥

देवद्रब्य कर नास करि बिप्रद्रब्य अपहारि।
ब्राह्मन कर अपमान करि कुल बिनास को टारि॥

[४३७]

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः॥

जे सतचरितसमृद्ध कुल अल्पबित्त किन होइ।
पाइ प्रतिस्ठा कीर्ति बड़ि जग नहिं तिन्ह किछु खोइ॥

[४३८]

गोभिः पशुभि रश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥

गोधन, पसुधन, अस्वधन, कृसिधन सों सम्पन्न।
चरितहीन कुल नहिं बढ़ैं सब बिधि होइँ बिपन्न॥

[४३९]

सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम्।
सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद् व्याधिमृच्छति॥

रूप घटइ सन्ताप सों, बल नासइ सन्ताप।
ज्ञान घटइ सन्ताप सों, ब्याधि देइ सन्ताप॥

[४४०]

सुखं च दुःखं च भवाभवौच लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न च हृष्येन्नशोचेत् ॥

सुख-दुख, उन्नति-अवनती, लाभ-हानि, जनि-मीच।
पारी सों सब लहइँ तेहि धीर न हरसि न सोच॥

[४४१]

सम्पन्नं गोषु संभाव्यं संभाव्यं ब्राह्मणे तपः।
संभाव्यं चापलं स्त्रीषु संभाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥

गौवन सों संपन्नता, ब्राह्मन मँह तप भूरि।
तिरियन मँह चापल्य, भय ज्ञाति तें संभव पूरि॥

[४४२]

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते॥

तियपर, गौपर, ज्ञातिपर, ब्राह्मन पर जो सूर।
पाको फल जिमि गुच्छ सों तिनकर पतन न दूर॥

[४४३]

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः॥

गौ, ब्राह्मन, सिसु, ज्ञाति, तिय, सरनागतहू लोग।
अन्न जाहिकर खात, ते कबहुँ न बध के जोग॥

[४४४]

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

राजन् ते अति सुलभ नर जे बोलहिं प्रिय बोल।
दुरलभ जे बोलहिं सुनहिं अप्रिय पथ्य अमोल॥

[४४५]

द्यूतमेतत् पुराकाले दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ।।

पुराकाल महँ द्यूत सों बैर बढ़्यो जनबीच ।
तेहि ते कबहुँ बिनोद हूँ द्यूत न खेलिय नीच ।।

[४४६]

वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वावसन्नाभयो मानकामः ।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्चबीजंस्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ।।

ससुर बहू संग उपहसइ, निरभय चाहइ मान ।
पर तिय निन्दा संग वा करि सो मूढ बखान ।।

[४४७]

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयाति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ।।

जुवक प्रान ऊपर उठहिं थविरहिं आवत देखि ।
उठि अभिवादन करत ही पुनि तिन्ह स्वस्थ सरेखि ।।

[४४८]

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ।।

गृहदीपित करि पुन्निमय, महाभाग, प्रिय गन्य ।
तिय अरु लछिमी गृहीजन दुहूँ राखियत धन्य ।।

[४४९]

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ।।

सिरी बढ़ावइँ सात धृति, सम, दम, सौच, करुन्य ।
द्रोह न मित्रन सँग तथा अनिठुर बानी पुन्य ।।

[४५०]

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः॥

कुलटा जाहि प्रसंसहीं चारन, जाहि जुवार।
सब बिधि कलुसित तासु जस, जीवन केवल भार॥

[४५१]

न वृद्धिर्बहुमन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥

सो उन्नति उन्नति नहीं जो अवनति कर हेत।
जो अवनति उन्नति करइ सो अवनति सुख देत॥

[४५२]

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय॥

कोउ समृद्ध निज गुननते, कोउ धन ते सम्पन्न।
धनसमृद्ध गुनहीन जो तिनहि न रखु आसन्न॥

[४५३]

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्य मश्नुते॥

जो दरिद्र रोगी दुखी ज्ञाति जनहिं उपकारि।
सो पसु-पुत्र-समृद्धि अरु अतुल स्रेय अधिकारि॥

[४५४]

संभोजनं संकथनं संप्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन॥

सहभोजन संप्रीति अरु संभासन भरि चाहु।
ज्ञातिजनन सँग करिय नित करिय बिरोध न काहु॥

[४५५]

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥

कहब नस्ट जदि सुनइ नहिं, गिरि समुद्र मँह नासि ।
आतमहीन मँह सास्त्र नसि हुतउ आगि बिनु नासि ॥

[४५६]

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

बिनय अपजसहिं नासई, नासि अनर्थहिं सक्ति ।
क्रोधहिं नासि छिमा, असुभ नासि आचरनभक्ति ॥

[४५७]

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ।
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ॥

जनम थान, आचरन, गृह, भोग्य बस्तु हू पेखि ।
कुलहिं परिखियत नृप सदा भोजन बस्त्रहु देखि ॥

[४५८]

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥

मृदुता सब सँग, छिमा, धृति, निन्दा नाहिं पराइ ।
मित्रन कँह सम्मान पुनि नित-नित आयु बढ़ाइ ॥

[४५९]

अनिर्वेदः श्रियोमूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्तमश्नुते ॥

सम्पति सुभ अरु लाभ कर मूल सतत उत्साह ।
उत्साही महिमा लहइ सुख असीम कर गाह ॥

[४६०]

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥

जो अति सूध, उदार अति, जो अति व्रति, अति सूर ।
निज प्रज्ञाअभिमान जेहि सिरि तेहि डरि रहि दूर ॥

[४६१]

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि संप्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

बृद्ध जनहिं जो सेवई नित करि तिनहिं प्रनाम ।
तेहि कर बिद्या आयु बल कीरति बढ़इ प्रकाम ॥

[४६२]

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।
असंभोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥

पन्थ जरा सब देहि कँह जरा गिरिन कँह वारि ।
बचन बान मन कँह जरा जरा अमैथुन नारि ॥

[४६३]

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः ।
नेन्धनेन जयेदग्नि न पानेन सुरांजयेत् ॥

बिनु सोये ही नींद जिति तिय जीतिय तजि काम ।
बिनु इंधन जीतिय अगिनि सुराजीति तजि जाम ॥

[४६४]

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च ।
एतेवै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥

आलस, चापल, मोह, मद, अबिनय अरु अभिमान ।
गोस्ठी, त्याग-अभाव ये दोस छात्र कँह जान ॥

[४६५]

सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥

जो सुखार्थि विद्या न तेहि बिद्यार्थिहिं सुख भागि ।
होइ सुखार्थि बिद्या तजइ बिद्यार्थी सुख त्यागि ॥

[४६६]

अन्यो धनं प्रेतगतस्यभुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।
द्वाभ्यामयं सहगच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्टयमानः ॥

मृत नर कर धन अन्य जन, देह आगि खग खाइं ।
परलोकहिं तेहि संग बस पुन्नि पाप दुइ जाइं ॥

[४६७]

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ।
सत्यंब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥

गुरुसेवा, स्वाध्यायनित, धरि जनेउ जल पास ।
सत्भासी नीचान्न तजि द्विज लहि ब्रह्मनिवास ॥

[४६८]

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

काज अकाज न जानि जो चलइ कुपन्थ अनीति ।
दरप-अन्ध अस गुरुहुँ कर परित्याग हइ रीति ॥

[४६९]

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत ॥

द्वार नरक कर तीन जो आतमबिनास कराहिं ।
काम क्रोध अरु लोभ इन तीनहुँ त्याग सराहिं ॥

[४७०]

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥

नखत लगन जो जाँचि बहु सिद्धि तजइ तेहि दूर ।
काज स्वयं निज नखत सुभ का करि तारा कूर ॥

[४७१]

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

पुरुस दास नित अरथ कर अरथ न केहु कर दास ।
इहइ सत्य नृप अरथबस हौं कौरव कर दास ॥

[४७२]

धर्मः कामश्च स्वर्गश्च हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥

धरम, काम, दम, क्रोध, स्रुत, हरख, सरग ये सात ।
धनही ते निज थिति लहहिं नहि स्वतन्त्र ये तात ॥

[४७३]

अनित्ये प्रियसंवासे संसारे चक्रवद्गतौ ।
पथिसंगतमेवैतद् भ्राता माता पिता सखा ॥

चक्र सरिस गति जगत् कर प्रियजनसंग अनित्त ।
राह चलत साथी मनौ भ्रातु ,मातु पितु मित्त ॥

[४७४]

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥

दस हयमेधि समान गिनि एकहि कृस्नप्रनामि ।
हयमेधी पुनि जनम लेइ जनमि न कृस्नप्रनामि ॥

[४७५]

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ।।

काज अकाज न जानि जो चलइ कुपन्थ अनीति ।
दरप-अन्ध अस गुरुहुं कर सदा दण्ड कह नीति ।।

[४७६]

न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा ।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च ।।

रिपु दुरबल जदि होइ तउ बली उपेच्छि न ताहि ।
प्रान हरइ बिस थोरहू थोरउ आगि प्रदाहि ।।

[४७७]

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ।।

पीड़ित हू होइ काहु हिय दुखिय न द्रोह न घोलि ।
दुहूँ लोक जो नास करि सो कटु बचन न बोलि ।।

[४७८]

नहि दुर्बलदग्धस्य कुले किञ्चित् प्ररोहते ।
आमूलं निर्दहत्येव मा स्म दुर्बलमासदः ।।

दुरबल आह सों जर्‍यौ कुल, पुनि किछु पनपि न पाइ ।
मूलसहित सो बिनसई, तेहि दुरबल न सताइ ।।

[४७९]

अयुद्धेनैव विजयं वर्धयेद् वसुधाधिप ।
जघन्यमाहुर्विजयं युद्धेन च नराधिप ।।

बिना लड़े जो जय मिली ताहि बढ़ाइय भूप ।
लड़े जुद्ध जो जय मिली अधम सो नहिं जयरूप ।।

[५८०]

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत् ।
विसृजन् श्लेष्ममूत्राणि कृपणं परिदेवयन् ॥

कफ मूत्रादि करइ बिबस, रोइ दीन परि रोग ।
छत्रिय कर सज्जामरन कहि अधरम बुध लोग ॥

[५८१]

सहस्व श्रियमन्येषां यद्यपि त्वयि नास्ति सा ।
अन्यत्रापि सतीं लक्ष्मीं कुशला भुञ्जते सदा ॥

सहउ सम्पदा आनकर जद्यपि सो तव नाय ।
कुसल मनुज नित भोगहीं आनहुँ कर सिरि जाय ॥

[५८२]

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथावर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारोमाययावाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

जो जैसन बरताव करि, तेहिसन तस, सोइ धर्म ।
माया मायावीन्ह सँग, सज्जन सँग सुभ कर्म ॥

[५८३]

यात्रार्थं भोजनं येषां सन्तानार्थं च मैथुनम् ।
वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥

भोजन करि जीवन निमित, मैथुन सन्तति हेत ।
बानी सत-भासन-निमित, ते दुख तरि बिनु सेत ॥

[५८४]

कृत्वा बलवता सन्धिमात्मानं यो न रक्षति ।
अपथ्यमिव तद् भुक्तं तस्य नार्थाय कल्पते ॥

बली संग करि साझ जो निज रच्छा न कराय ।
लाभ न पावइ, देह महँ जिमि अपथ्य सोइ खाय ॥

[४८५]

शत्रोरनार्यभूतस्य क्लिष्टस्य क्षुधितस्य च ।
भक्ष्यं मृगयमाणस्य कः प्राज्ञो विषयं व्रजेत् ॥

कुटिल सत्रु जो कस्टप्रद भूखो खोजत बेध्य ।
चतुराई यहि चतुर की बनइ न ताकर मेध्य ॥

[४८६]

तलवद् दृश्यते व्योम खद्योतोहव्यवाडिव ।
न चैवास्ति तलं व्योम्नि खद्योते न हुताशनः ॥

नभ मँह तल दिखलात जिमि खद्योतन मँह आग ।
किन्तु न नभ तलवान् नहिं खद्योतन मँह आग ॥

[४८७]

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ॥

घर नहिं घर घरिनो हि घर बुध कहि सहित बिचार ।
घरिनी बिनु घर सून अस जस सूनो कान्तार ॥

[४८८]

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः ॥

जिमि सागर मँह काठ सों काठ मिलइ कोउ आइ ।
मिलि करि पुनि बिलगाइ सोइ तइसइ प्रानि मिलाइ ॥

[४८९]

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥

विसय सोक कर सहस अरु भयकर सतसत आइँ ।
प्रतिदिन पैठत मूढ हिय नहिं पंडितहिं सताइँ ॥

[४९०]

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतम् ।।

कालिह करै सो आज कर अपराह्निक पुरबाह्न ।
मीचु न जोहइ कबहुँ केहु कियेउ न कियेउ कि काह ।।

[४९१]

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ।।

बिद्यासम कोउ आँख नहिं तप नहिं साँचसमान ।
दुख नहिं रागसमान कोउ सुख नहिं त्यागसमान ।।

[४९२]

प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् ।
सह स्त्रियाथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत् ।।

सूरज ओर न मूत्र करि, अपुन पुरीष न दीख ।
तिय सँग भोजन सयन हूँ करिय न अस बुधसीख ।।

[४९३]

यद् यच्छरीरेण करोति कर्म शरीरयुक्तः समुपाश्नुते तत् ।
शरीरमेवायतनं सुखस्य दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम् ।।

करि सरीर सों करम जो भोगि सो धारि सरीर ।
सुखआयतन सरीर तिमि दुखआयतन सरीर ।।

[४९४]

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि चाभ्येति भूयश्चापि प्रवर्तते ।।

इहइ ओसधी दूख को पुनि नहिं सोचिय ताहि ।
सोंचे [illegible] बहुरि यहु करइ अधिक जिउ दाहि ।।

[४९५]

यौषितां न कथाः श्राव्या, न निरीक्ष्या निरम्बराः ।
कथंचिद् दर्शनादासां दुर्बलानां विशेद् रजः ॥

सुनिय न चरचा तियन कर, नगन न देखिय ताहि ।
कैसेहु देखे तियन नर दुरबल मन अतुराहि ॥

[४९६]

कालः कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम् ।
नाशं विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःखं भवाभवौ ॥

करइ बिगारइ काल एक अउर न कारन कोउ ।
सुख दुख नास विनास कर जनम मरन कर सोउ ॥

[४९७]

मातापितृभ्यां जामीभि र्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥

मातु पिता दुहिता तनय भार्जा भाई संग ।
बहू सँग अरु दास सँग भल न विवाद प्रसंग ॥

[४९८]

न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु ।
न भुञ्जीतान्तरा काले नानृतावाह्वयेत् स्त्रियम् ॥

सोइ न दिन नहिं रातिकर आदि अन्त दुहुँ जाम ।
खाइ न अन्तर समय कहुँ बिनु रितु भोगि न वाम ॥

[४९९]

क्षत्रधर्मा, वैश्यधर्मा नावृत्तिः पतते द्विजः ।
शूद्रधर्मा यदा तु स्यात्तदा पततिवै द्विजः ॥

भल अबृत्ति ब्राह्मन गहइ छत्रि-बैस्य कर बृत्ति ।
यहइ उचित, नहि सूद्रकर गहिबो कतहुँ कुवृत्ति ॥

[५००]

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः स्त्रीणां कौतूहलं मलम् ॥

पारायन बिनु दूसि स्रुति बिनु व्रत बाभन दूसि ।
भुतल दोस बाहीकजन, तिय कौतूहल दूसि ॥

[५०१]

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च ।
अर्थांश्चिन्तयतो वापि कामयानस्य वै पुनः ॥

रोगी को कँह नींद अरु क्रोधी को कँह नींद ।
धनचिन्तित को नींद नहिं कामी को नहिं नींद ॥

[५०२]

जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया ।
नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिव ॥

दुखी कुलबहू सपित गृह कृत्यानासित जान ।
नहिं सोहइँ नहिं बढ़इँ ते, सिरिबिहीन तिन्ह मान ॥

[५०३]

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रीत्यर्थं लोकयात्रायाः पश्यत स्त्रीनिबन्धनम् ॥

सन्तति जनि, तेहि पालई, सहि कलेस अति घोर ।
लोकबृत्त हित तिय धरइ बन्धन परम कठोर ॥

[५०४]

श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता ।
पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत ॥

जो बैभव चाहइ मनुज तियहिं देइ सम्मान ।
पालित रच्छित सकल विधि सिरि गृहतिय नहिं आन ॥

[५०५]

यद् वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ।।

सिर लपेटि, दक्खिनमुखी, पैर उपानह धार ।
भोजन कबहुँ न करिय, यहि अधम असुर आचार ।।

[५०६]

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् विगर्हितान् ।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्यहीनांश्च नाक्षिपेत् ।।

हीनअंग अधिकांग जे, गर्हित, विद्याहीन ।
कबहुँ न कोसिय इन्हहिं अरु रूप-सत्य-धन-हीन ।।

[५०७]

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम् ।।

दंड न तानिय क्रोध मँह, केहुँ पर कहुँ न चलाइ ।
सीख हेत सुत सिस्य कँह केवल दंड कराइ ।।

[५०८]

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् स्वाध्याये भोजने तथा ।।

त्यागि मूत्र-मल, पन्थ चलि, पाद पखारिय स्वीय ।
भोजन अरु स्वाध्याय मँह अवसि सदा करनीय ।।

[५०९]

उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।
प्राक्शिरास्तु स्वपेद् विद्वानथवादक्षिणाशिराः ।।

उत्तर सिर करि सोइ नहिं पच्छिम सिर नहिं सोइ ।
पूरब वा दक्खिन दिसा करि सिर बुधजन सोइ ।।

[५१०]

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ॥

भोजन गीले पद करिय गीले पद नहिं सोइ ।
गीले पद भोजन करत आयु बरस सत होइ ॥

[५११]

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥

दुहूँ हाथ सों एक सँग सिर खुजलाइ न कोइ ।
सिर पर अधिक नहाइ नहिं तेहि ते आयु न खोइ ॥

[५१२]

रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यंतु पण्डितैः ।
वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो ॥

लाल फूल कर माल नहिं कमल कुमुद दुइ छोरि ।
सेत फूल कर माल भल बुधजन धारि बहोरि ॥

[५१३]

अन्यदेव भवेद् वासः शयनीये नरोत्तम ।
अन्यद् रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेवहि ॥

अन्य बस्त्र धरि सयन करि अन्य धारि चलि पन्थ ।
देवन पूजिय अन्य धरि यहि आचार सुपन्थ ॥

[५१४]

सन्ध्यायां न स्वपेद् राजन् विद्यां न च समाचरेत् ।
न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् ॥

सांझ समय बिद्या पढ़ब सयनहु उचित न काहु ।
भोजन हू नहिं करिय तेहि दीरघ जीवन लाहु ॥

[५१५]

यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः।
न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः॥

दानी कँह जो पुन्नि कहि ग्राही कँह सोइ पुन्नि।
दान-पुन्नि दुहुं ओर चलि नहिं लहि एकहि पुन्नि॥

[५१६]

कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च।
एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत्ततो जलम्॥

गंगा, पुस्कर अरु गया कुरुच्छेत्र प्रभास।
इन्हहिं सुमिरि नित न्हाइ नर दुख नहिं आवइ पास॥

[५१७]

न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि।
असंभिन्नार्यमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः॥

केहुकर पाप न गन्य जेहि, केवल पुन्निहि गन्य।
आरज परउपकाररत पुरुसोत्तम सो धन्य॥

[५१८]

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति॥

अंग सुद्ध होइं सलिल सों सत्य सों मन कँह सुद्धि।
बिद्या तप सों सुद्ध नर, ज्ञान सो सोधिय बुद्धि॥

[५१९]

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोधिगच्छति॥

इकला होइ एकान्त मंह सोचिय निज हित बात।
इकलइ सोचत नरहिं मिलि परम स्रेय अवदात॥

[५२०]

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं तद् वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥

पुस्पित सुरभित एक तरु बासि बिपिन सब कोर ।
जिमि सत्करमा गुनी सुत दीपइ कुल चहुं ओर ॥

[५२१]

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥

लोकबिदित कहकूति यहि मंगलमय मोहि भाइ ।
अवसि लहइ सुख जियत नर बरिस सतादपि जाइ ॥

[५२२]

दोषः कस्य कुले नास्ति व्याधिना के न पीडिताः ।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम् ॥

दोस न केहिके कुल दिखइ रोग न काहि सताइ ।
बिपति परयौ नहिं कौन नर केहि सुख सदा बसाइ ॥

[५२३]

किं दुस्सहंनु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यंकदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥

दुसह न सज्जन कँह किछू कोबिद किछु नहिं चाह ।
कृपिनहि नाहिं कुकाज किछु तजि न जितात्मा काहि ॥

[५२४]

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्र्यमेव व्याख्याति शुचिं वा यदिवाऽशुचिम् ॥

कोउ कुलीन अकुलीन वा पुरुसमन्य वा बीर ।
केवल चरित प्रमानि तेहि सुचि वा असुचि अधीर ॥

[५२५]

कुसुमस्तबकस्येव द्वयीवृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्येत वन एव वा ॥

कुसुम गुच्छ सों दुइ गती दीखि मनस्वी केर।
बास कि जग सिर पर लहइ बिखरि कि बनमँह हेर ॥

[५२६]

विष्णुर्बिभर्तिभगवानखिलां धरित्रीं तं पन्नगस्तमपि तत्सहितं पयोधिः।
कुम्भोद्भवस्तमपिबत् खलु हेलयैव सत्यं न कश्चिदवधिर्महतां महिम्नः ॥

धारइं धरिनी बिस्नु, तेहि सेस, सिन्धु तिन्ह दोउ।
घटजोनी तेह घटकि गो महिमा सीम न कोउ ॥

[५२७]

गुरुशुश्रूषयाविद्या पुष्कलेन धनेनवा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थान्नोपलभ्यते ॥

गुरु सेबा बिद्या मिलइ धन खरचे वा सोइ।
बिद्या वा बिद्या दिये साधन चउथ न कोइ ॥

[५२८]

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम्।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥

सतयुग तप साधन परम, त्रेता मँह पुनि ज्ञान।
द्वापर साधन जज्ञि बड़ कलिजुग केवल दान ॥

[५२९]

दारिद्रयनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥

दारिद बिनसइ दान तें, सील तें दुरगति जाइ।
प्रज्ञा तें अज्ञान नसि, भक्ति तें भय बिनसाइ ॥

[५३०]

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपिसन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ।।

बिद्या सों सम्पन्न तउ दुरजन बरजिय दूर ।
मनिसों भूसित नाग किमि भयकारी नहिं पूर ।।

[५३१]

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वेदद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ।।

आँख देखि डग धरिय अरु बस्त्र छानि जल पीउ ।
सत्य सोधि बोलिय बचन चितसुध काज करेउ ।।

[५३२]

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ।।

बीना बजि नहिं तार बिनु, रथ न चलइ बिनु चक्र ।
बिनु पति नारि न सुख लहइ जद्यपि सुत सत सक्र ।।

[५३३]

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जा स्तिष्ठन्ति पादपाः ।।

अति सूधो नहिं होब भल देखु बनस्थल जाइ ।
सूधो रूखहिं काटियत टेढ़ो बचि हरिआइ ।।

[५३४]

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ।।

जे मंगल आचरहिं नित पालहिं सत् आचार ।
करहिं हवन जप नित्य तेहिलहि न पराभव मार ।।

[५३५]

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीनशत्रवः ॥

बनबासी मुनि जनहुँ जिन्हँ अपनो काम सों काम ।
उदासीन - रिपु - मीत ये तीनउ तिन्हहुँ तमाम ॥

[५३६]

यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति ।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां सवै पुरुष उच्यते ॥

जो भड़क्यो निज कोप को छिमा सों देइ दुराइ ।
जथा नाग निज कैंचुरिहिं सोई पुरुस कहाइ ॥

[५३७]

यत् कृत्वा न भवेद् धर्मो न कीर्तिर्नयशो ध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत् ॥

कीरति धरम न जाहि सों नहिं थाई जसु लाहु ।
केवल काय कलेस सहि को अस करम निबाहु ॥

[५३८]

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥

खनती सो खनि नर जथा अवसि बारि लहि जाइ ।
सेवातत्पर सिस्य तिमि गुरुगत बिद्या पाइ ॥

[५४९]

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न च मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥

दुरगम गिरि कान्तार बिच भल बनचर सँग घूमि ।
न तु कबहूँ सुरपतिभवन सुख मूरख सँग झूमि ॥

[५४०]

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थेशुचि र्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥

सब सुचिता सों परम बुध सुचिता अरथ कि मानि ।
अरथ सों सुचि सो सुचि मनुज मृद् जल सों न बखानि ॥

[५४१]

सुकुले योजयेत् कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मेण योजयेत् ॥

सत्कुल मँह कन्या, तनय बिद्या माँहि लगाइ ।
रिपुहिं बिपति सों जोड़ियत, धरम सों मीत बँधाइ ॥

[५४२]

हयानामिव जात्यानामर्धरात्रार्धशायिनाम् ।
नहि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥

उत्तमजातिक अस्व जिमि पहर एक निसि सोइ ।
बिद्यार्थी कर नयन तिमि नहिं चिर निद्रा होइ ॥

[५४३]

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥

सुद्ध होइं बुध छिमा ते दान कुकरमिहिं सोधि ।
जप तें पापी गुप्त जे, तप स्रुतिज्ञानिहिं सोधि ॥

[५४४]

असम्पादयतः कश्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः ।
यदृच्छाशब्दवत् पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥

सारथ किय निज जाति, गुन, क्रिया सबद नहिं काउ ।
जनमप्रयोजन अधम सो केवल पायो नाउँ ॥

[५४५]

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥

लाख छिपावन चाह कोउ छिपि न सकइ आकार ।
प्रगटइ बरबस मनुज कर मन गत भाव बिकार ॥

[५४६]

धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः ।
प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी ॥

कस्ट बीच परि धीरजन करइ न तनिक विसाद ।
प्रबिसि राहुमुख किमि ससी बहुरि न पाइ प्रसाद ॥

[५४७]

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥

देस अराजक मध्य कोउ आपन काहुक नाहिं ।
मीनसरिस जल बीच नर नित्य परस्पर खाहिं ॥

[५४८]

नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमंधनम् ।
नास्ति ज्ञानसमोलाभो न च धर्मसमः पिता ॥

छिमा सरिस माता नहीं जसु सम बित्त न आन ।
ज्ञान सरिस कोउ लाभ नहिं पिता न धरम समान ॥

[५४९]

परान्नं च परस्वं च परशय्या परस्त्रियः ।
परवेश्मनिवासश्च शक्रादपिहरेच्छ्रियम् ॥

परधन सेइ परान्न अरु परसज्जा परनारि ।
परगृह बास सुरेन्द्रहूँ सिरिहत करइ अनारि ॥

[५५०]

पक्षिणां बलमाकाशो मत्स्यानामुदकं बलम् ।
दुर्बलस्य बलं राजा बालानां रोदनं बलम् ॥

पंछिन कर बल गगन गनि मीन केर जल जान ।
राजा बल दुरबलन कर सिसु बल रोउब मान ॥

[५५१]

मुखं पद्मदलाकारं वाणी चन्दनशीतला ।
हृदयं कर्तरीतुल्यं त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥

कमल सरिस सुन्दर बदन बानी चन्दन सीत ।
चित कैंची सम तीख यहि लछन धूरत मीत ॥

[५५२]

यथा ह्यनुदका नद्यो यथावाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥

जथा सरित बिनु सलिल नहिं, बन बिनु रूख न कोई ।
बिनु गोपालक गाय, तिमि नृप बिनु रास्ट्र न होइ ॥

[५५३]

शोचन्नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान् ।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

रिपुहिं अनन्दइ सोच करि दूखइ बन्धु स्वकीय ।
नित आपुन कँह छीन करि, सोच न तेहि करनीय ॥

[५५४]

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

सुनहु धरम कर सार यहु सुनि समुझउ मन लाइ ।
जो अपनो प्रतिकूल लगि सो आनहु न लगाइ ॥

[५५५]

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

दुख परवस, सुख आपुबस, सब अनुभइ सब जानि ।
सुखदुख कर संछेप महँ बुध यहि लच्छन मानि ॥

[५५६]

सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि ।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ॥

बलवानहिं सब पथ्य इह सब पावन जो तासु ।
न्यायधरम सब बलीकर सकल स्वीय तेहि भासु ॥

[५५७]

सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम् ।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ॥

अपुनहिं कँह जग मानई सब सों बड़ बुधिमान ।
बहु आदरइ प्रसंसई सब अपुनहिं नहिं आन ॥

[५५८]

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रियेजने ।
अपि स्नेहपरिष्वङ्गाद् वर्तिरार्द्राऽपि दह्यते ॥

सुमिरि बियोगज दुख तजिय प्रियजन सों निज नेह ।
नेह लिपटि बाती जरइ जदपि आर्द्र सब देह ॥

[५५९]

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥

पुरब देह अरजित कियो अपन करम ही देव ।
तेहि तें बुध उत्तम कहँहिं आपुन पौरुसमेव ॥

[५६०]

द्विषतामुदयः सुमेधसा गुरुरस्वन्ततरः सुमर्षणः ।
न महानपि भूतिमिच्छता फलसम्पत्प्रवणः परिक्षयः ॥

रिपुसमृद्धि दूखान्त जो बुद्धिमान् सहि ताहि ।
बढ़िउ हानि लाभान्त जो सहि न चतुर पुनि वाहि ॥

[५६१]

विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदपेतमायतिः ।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पदं नृपश्रियः ॥

जदि बिक्रम नहि बिपति तब, बिपति परे नहि भव्य ।
नहिं भविस्य तेहि लघु गनिय नृपपद लघुहिं न लभ्य ॥

[५६२]

मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयंहतैः ।
लघयन् खलु तेजसा जगन्नमहानिच्छति भूतिमन्यतः ॥

स्वयं मारि मदमत्त गज सिंह जीविका निबाहि ।
तेजस्वी जग लघु गनइ आनते भूति न चाहि ॥

[५६३]

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ॥

जलत अगिनि नहिं मसलि कोउ भसमरासि मलि जाय ।
मानी प्रान तजइं बरु तेज न कबहुँ गवाँय ॥

[५६४]

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान् ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः ।
प्रकृतिः सा खलु महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया ॥

गरजत मेघ न सिंह सहि प्रतिगरजइ पुर जोर ।
अन्यसमुन्नति नहिं सहइ प्रकृति बड़न कर घोर ॥

[५६५]

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

सहसा कारज नहिं करिय बिपतिधाम अबिबेक ।
करि बिबेक आचरत तेहि सम्पति बरइं अनेक ॥

[५६६]

शुचि भूषयति श्रुतं वपुः प्रशमस्तस्यभवत्यलंक्रिया ।
प्रशमाभरणं पराक्रमः स नयापादितसिद्धिभूषणः ॥

सोहइ बपु सुचि सास्त्र सों प्रसम सजावइ ताहि ।
सजइ पराक्रम सँग प्रसम नयज सिद्धि सँग वाहि ॥

[५६७]

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥

रिपुहिं निसेस किये बिनु लहि न प्रतिस्ठा कोइ ।
धूलिहिं पंक बनाइ तँह उदक थान निज होइ ॥

[५६८]

ध्रियते यावदेकोऽपिरिपुस्तावत् कुतः सुखम् ।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम् ॥

जब तक एकउ रिपु रहइ तब तक सुख कँह पाइ ।
देखत देवन्ह राहु एक चन्दहिं दुख पहुँचाइ ॥

[५६९]

उपकर्त्रारिणा संधिर्न मित्रेणापकारिणा ।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥

सन्धि सत्रु उपकारि सँग नाहिं मीत अपकारि ।
उपकारहुँ अपकारहूँ मितरिपु लच्छन धारि ॥

[५७०]

मनागनभ्यावृत्यावा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी ।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ॥

अलप सकृत् अपराधि जो छमासील छमि ताहि ।
पुनि-पुनि बहु अपराधि जो छमइ कौन पुनि वाहि ॥

[५७१]

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥

सदा पुरुस भूसन छिमा जिमि नारी कँह लाज ।
विक्रम पुनि परिभव समय जिमि सुरतहिं निरलाज ॥

[५७२]

माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपिजीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥

सहि दुख पर अवमान जलि जिअब सो अधम कहाइ ।
बरु जग जनम न लेत सो मातु कलेस बढ़ाइ ॥

[५७३]

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥

पद आहत उठि धूलि जो तुरत सीस चढ़ि धाय ।
अपमानहु सहि सान्त नर धूलिहु ते अधमाय ॥

[५७४]

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ॥

दंडसाध्य रिपु सों कबहुँ साम न नीति प्रयोग ।
स्वेदयोग्य नव ज्वरहिं नहिं जल सेचन कर जोग ॥

[५७५]

स्पृशन्ति शरवत्तीक्ष्णास्तोकमन्तर्विशन्ति च ।
बहुस्पृशापि स्थूलेन स्थीयते बहिरश्मवत् ॥

तीख बुद्धि जिमि बान छुइ थोर घसइ बहु दूर ।
थूल बुद्धि पाथर सरिस बहु छुइ बैठि बिसूर ।।

[५७६]

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च ।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः ॥

छोटउ काज करइ जड ब्यग्र अधिकतर होइ ।
कुसलबुद्धि बड़ काजहूँ करत न व्याकुल कोइ ।।

[५७७]

अचिरादुपकर्तुराचरेदथवात्मौपयिकीमुपक्रियाम् ।
पृथुरित्थमथाणुरस्तु सा न विशेषेविदुषामिह ग्रहः ॥

उपकारी कँह तुरत करु बनइ जो प्रत्युपकार ।
थोर होइ वा ढेर सो बुध नहि करइं बिचार ।।

[५७८]

निषिद्धमप्याचारणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वदा ।
घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले क्वचिद् बुधैरप्यपथेनगम्यते ॥

करु बरजितहू जब बिहित देइ न आपति काम ।
बारिस पिच्छल राजपथ तजि बुध अपथहु थाम ।।

[५७९]

प्रदक्षिणप्रक्रमणालवालविलेपधूपाचरणाम्बुसेकैः ।
इष्टं च मिष्टं च फलं सुवाना देवा हि कल्पद्रुमकाननं नः ॥

आलबाल परदच्छिना लेपधूप जलसींच ।
देव कलपतरुबन सरिस इस्ट मिस्ट फल खींच ।।

[५८०]

याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं न द्रुमैर्नगिरिभिर्न समुद्रैः ॥

जाचकजन इच्छा न जो पूरि सकइ हतभागि ।
तरु गिरि सागर भार नहिं, तेइ भूभार अभागि ॥

[५८१]

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत् ।
खलत्वमल्पीयसि जल्पितेऽपि तदस्तु बन्दिभ्रमभूमितैव ॥

अद्‌भुत गुन न प्रसंसि जदि बानि काज केहि आइ ।
थोर कहे जग खल कहइ भल चारन कहवाइ ॥

[५८२]

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यो विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥

मूरख सुगम मनाइबो बुधहिं सुगमतर जान ।
अलपज्ञानि दुरबुधहिं पुनि बिधिहु न सकि को आन ॥

[५८३]

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥

खल-सज्जन-मैत्री जथा छाया पूर्बपराह्न ।
एक बड़ी छोटी बनइ छोटी बड़ि बनि आन ॥

[५८४]

एको देवः केशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वासः पत्तने वा वने वा एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥

एक देव केसव कि सिव, जति कि नृपति इक यार ।
बास एक पत्तन कि बन, दरि कि सुन्दरी दार ॥

[५८५]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

फल आये तरुवर झुकहिं जलद पाइ जलभाव।
सम्पति पाइ सुजन नवहिं यहि उपकारिसुभाव ॥

[५८६]

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेणभीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः ॥

देवहिं तोष न रतन लहि, भय न भीम बिस पाइ।
बिनु अमरित न बिराम किय बिरमि धीर सिधि पाइ ॥

[५८७]

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधिया कार्यं कर्तव्यं सुविचारतः ॥

करम अधीन मिलहिं फल, बुद्धि करम अनुसारि।
तऊ सुधी जन करम करि सदा सो सोचि बिचारि ॥

[५८८]

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतांचविलोक्यदरिद्रतां विधिरहोबलवानिति मे मतिः ॥

रबि ससि कँह तमगहन लखि, गज भुजंग कँह पास।
बुधजन कँह दारिद्र लखि बिधि बलीन बिस्वास ॥

[५८९]

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥

सकल गुनाकर पुरुसमनि भुवनरतन रचि जाहि।
बिधि कर बालिसता अहो छन मँह नासइ ताहि ॥

[५९०]

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥

बन-रन-रिपु-जल-अगिनिबिच गिरि सागर बिचि-माल।
कस्टित सुप्त प्रमत्त कँह पुरब पुन्नि रखवाल ॥

[५९१]

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित् क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥

अप्रिय बचन दरिद्र जो धनी मधुर प्रिय बोल।
रतस्वदार, निन्दाबिरत, बिरल सो नर अनमोल ॥

[५९२]

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥

मदनज्वाल बेस्या बनी रूपेन्धन धधकाइ।
कामी तँह स्वाहा करइं निजधन जौवन जाइ ॥

[५९३]

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्नभेदप्रतिपत्तिरस्तिमेतथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥

प्रभु महेस जगदीस वा जगदात्मा जगनाथ।
भेद न तिन्ह मँह दिखउँ मन भगति तऊ सिव साथ ॥

[५९४]

अनेके फणिनः सन्ति भेकभक्षणतत्पराः।
एक एव हि शेषोऽयं धरणीधरणक्षमः ॥

फनि अनेक दीखइं उदर भरि दादुर जे मोटाइं।
धरनिधरन समरथ पुनि सेष सो एक कहाइं ॥

[५६५]

प्रतापभीत्या भोजस्य तपनो मित्रतामगात् ।
और्वोवाडवतां धत्ते तडित् क्षणिकतां गता ॥

डरचो जो भोजप्रताप सो तपन बनि गयो मित्र ।
और्व बन्यो बाडव तथा तडित छनिक, सो चित्र ॥

[५६६]

मरणं मङ्गलं यत्र विभूतिश्च विभूषणम् ।
कौपीनं यत्र कौशेयं सा काशी केन मीयते ॥

जहाँ मरन मंगल परम भूति बिभूसन जान ।
पीताम्बर कौपीन जँह को कासी सम आन ॥

[५६७]

दारिद्र्यस्य परामूर्ति र्याच्ञा न द्रविणाल्पता ।
अपि कौपीनवाञ्छम्भुस्तथापि परमेश्वर. ॥

अपररूप दारिद्रय कर जांचा नहिं धन स्वल्प ।
धारि मात्र कौपीन सिव तउ परमेस्वर जल्प ॥

[५६८]

यच्छन् क्षणमपि जलदो वल्लभतामेति सर्वलोकस्य ।
नित्यप्रसारितकरः करोति सूर्योऽपि संतापम् ॥

छनमात्रउ जलदान करि जलद लोकप्रिय सोइ ।
फैलायो जो कर तपन सबहिं तापकर होइ ॥

[५६९]

बाल्ये सुतानां सुरतेऽङ्गनानां स्तुतौ कवीनां समरे भटानाम् ।
त्वंकारयुक्ता हि गिरः प्रशस्ताः कस्ते प्रभो मोहभरः स्मर त्वम् ॥

बाल्यकाल सन्तति, सुरत नारी, स्तुति कबि लोग ।
समरभूमि भट 'तुम' कहहिं, उचित सो बचन प्रयोग ॥

[६००]

अवमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्ठतः।
स्वार्थं समुद्धरेत् प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशोहि मूर्खता ॥

अपमानहिं अँगियाइ जन मानहिं राखि पछार।
चतुर काज निज साधईं काज बिगारि गँवार ॥

[६०१]

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥

लेब-देब कर, काज जो करनीयहु पुनि ताहि।
तुरत न करिय त काल सब औचित नासइ वाहि ॥

[६०२]

अतिदाक्षिण्ययुक्तानां शङ्कितानां पदे पदे।
परापवादभीरूणां दूरतो यान्ति संपदः ॥

अति कौसल सों जुक्त जो पद पद संका पूर।
लोकवाद सों भीरु जो संपद तजि तेहि दूर ॥

[६०३]

गुणग्रामाविसंवादि नामापिहि महात्मनाम्।
यथा सुवर्ण - श्रीखण्ड - रत्नाकर - सुधाकराः ॥

नामउ गुन प्रगटइ परम सन्तन केर अखंड।
रतनाकर, सुबरन जथा अमृताकर सिरिखंड ॥

[६०४]

नागुणी गुणिनं वेत्ति गुणी गुणिषु मत्सरी।
गुणी च गुणरागी च विरलः सरलोजनः ॥

समुझि गुनहिं निरगुन नहीं, गुनी गुनीसन डाहि।
गुनी जो गुन सम्मान करि बिरल सो नर जग माहि ॥

[६०५]

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते॥

संगति दोष न लाइई सज्जन माँहि बिकार।
चन्दन बिसमय होत नहिं लिपटे नाग हजार॥

[६०६]

मान्या एव हि मान्यानां मानं कुर्वन्ति नेतरे।
शम्भुर्बिभर्ति मूर्ध्नेन्दुं स्वर्भानुस्तं जिघृक्षति॥

मान्य मान्य कँह मान देइ पामर तिन्हहिं न मानि।
सम्भु ससिहिं निज सीस धरि राहु ग्रसइ अपमानि॥

[६०७]

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

उदय रकत रबिरूप दिख रकत अस्तमन धूप।
संपति होइ बिपत्ति वा रहि महान एक रूप॥

[६०८]

सद्भिस्तुलीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम्।
असद्भिः शपथेनापि जले लिखितमक्षरम्॥

परिहासउ सत्पुरुस कहि पत्थर केर लकीर।
सपथ खाइ दुरजन कहइ पानी खींचि लकीर॥

[६०९]

हरेः पदाहतिः श्लाघ्या न श्लाघ्यं खररोहणम्।
स्पर्धाऽपि विदुषा युक्ता न युक्ता मूर्खमित्रता॥

खुराघात भल बाजिकर नहिं खर पर आरोह।
बुध सँग होड़ लगाइ भल नहिं बालिस सँग छोह॥

[६१०]

काकैः सह विवृद्धस्य कोकिलस्य कला गिरः।
खलसंगेऽपि नैष्ठुर्यं कल्याणप्रकृतेः कुतः॥

पल्यौ काक संग पिक तऊ करइ मधुर प्रिय राउ।
खल संगउ रहि साधु मन निठ्र होइ नहिं काउ॥

[६११]

उपचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम्।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि॥

सँग सेइय बुधजन जदपि देइं न किछु उपदेस।
जो सुभावरस कहइं ते सोइ सास्त्र ब्यपदेस॥

[६१२]

अनुकुरुतः खलसुजनावग्रिमपाश्चात्यभागयोः सूच्याः।
विदधाति रन्ध्रमेको गुणवानन्यस्तु पिदधाति॥

खल सज्जन अनुसरइँ भल सूची के दुहुँ छोर।
करि एक तीखो रन्ध्र तेहि गुणवान मूँदइ और॥

[६१३]

अन्तःकटुरपि लघुरपि सद्वृत्तं यः पुमान्न संत्यजति।
स भवति सद्यो वन्द्यः सर्षप इव सर्वलोकस्य॥

जो अन्तसकटु लघु भलो सद्बृत्तता न त्यागि।
बन्द्य बनइ सो लोक बिच सरसों सम धनि भागि॥

[६१४]

किं जन्मना च महतापितृपौरुषेण शक्त्या च याति निजया पुरुषः प्रतिष्ठाम्
कुम्भा न कूपमपि शोषयितुं समर्थाः कुम्भोद् भवेन मुनिनाऽम्बुधिरेव पीतः

गौरव निज गुन सों मिलै जनम जनक सों नाहिं।
कुम्भज सोखेउ सिन्धु नहि कूपउ कुम्भ सुखाहिं॥

[६१५]

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

अधम न आरभि बिघनभय, मध्य बिघनहत तोरि।
विधन थपेड़ो खाइ बहु उत्तम अरभि न छोरि ॥

[६१६]

आक्रोशितोऽपि सुजनो न वदत्यवाच्यं निष्पीडितो मधुरमुद्वमतीक्षुदण्डः।
नीचो जनोगुणशतैरपि सेव्यमानो हास्येनतद् वदतियत् कलहेऽप्यवाच्यम् ॥

गाली दियेउ न कटु कहइ सुजन ईख जिमि मीठ।
दुरजन कहि परिहास सोउ जो कलहउ नहि दीठ ॥

[६१७]

यद् वञ्चनाहितमतिर्बहुचाटुगर्भं कार्योन्मुखः खलजनः कृतकं ब्रवीति।
तत्साधवोन न विदन्ति विदन्ति किन्तु कर्तुं वृथा प्रणयमस्य न पारयन्ति ॥

कपटि कुमति खल काज हित चाटु बनाइ जो बोलि।
सुजन सो समुझहिं सकल तउ झूठ न तेहि हित खोलि ॥

[६१८]

कण्ठे गद्गदता स्वेदो मुखे वैवर्ण्यंबेपथू।
म्रियमाणस्य चिह्नानि यानि तान्येव याचके ॥

बिबरनमुख गदगद बचन कम्प पसीनो पेखि।
जाचक मँह सब चिह्न जो मरत मनुज मँह देखि ॥

[६१९]

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम्।
परचित्तगतान् दारान् पुत्रं च व्यसनातुरम् ॥

देसभंग कुलनास अरु अन्यसक्त निजदार।
धन्य जे नहिं देखहिं तथा पुत्रहिं ब्यसन बिकार ॥

[६२०]

शून्यमपुत्रस्य गृहं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥

घर सूनो जेहि पुत्र नहिं बिनु सुमीत चिर सून ।
सब दिसि सूनो मूढ कँह निरधन कँह सब सून ॥

[६२१]

अम्बा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया ।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोऽयम् ॥

अम्बा मोहि न स्नुसहि नहिं स्नुसा न मोहि नहिं सास ।
महुँ नहिं मातु न ताहि सन सुखी, को दोसी भास ॥

[६२२]

घृतलवणतैलतण्डुलशाकेन्धनचिन्तयानुदिनम् ।
विपुलमतेरपि पुंसो नश्यति धीर्मन्दविभवत्वात् ॥

तन्दुल इंधन साक घृत लवन तैल कर सोच ।
बिपुलमतिहु कर नसइ मति बित्त होइ जदि पोच ॥

[६२३]

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं प्राप्तेषु वा तेषु न तैश्च किञ्चित् ।
चिकित्सितज्यौतिषमन्त्रबादा पदे-पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥

मन विनोद नहिं और किछु अन्य सास्त्र सों चाहु ।
बैदक, जोतिस, तंत्र पुनि दइं प्रतीति बड़ लाहु ॥

[६२४]

पुरीषस्य च रोषस्य हिंसायास्तस्करस्य च ।
आद्याक्षराणि संगृह्य वेधाश्चक्रे पुरोहितम् ॥

पुरिस, रोस, हिंसा, तथा तस्करहू कर लीन्ह ।
अच्छर आदि प्रजापती सिरजि पुरोहित दीन्ह ॥

[६२५]

बिना मद्यं विना मांसं परस्वहरणं विना।
विना परापवादेन दिविरो दिवि रोदिति॥

मद्य नहीं तँह मांस नहि परधन हरन न होइ।
परनिन्दा नहि करि सकइ सरग दिविर परि रोइ॥

[६२६]

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

छुद्रबुद्धि अस सोचईं कोउ आपन कोउ आन।
विपुलचरित सब जगत् कँह कुटुमरूप निज जान॥

[६२७]

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

कारज सिधि उद्दिम किये नाहिं मनोरथ भूरि।
भूखे सोये सिंह को मुख मृग स्वयं न पूरि॥

[६२८]

विहाय पौरुषं योहि दैवमेवावलम्बते।
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः॥

निज उद्दिम करि त्याग जो दैव भरोंसे डोलि।
भवनोपरि कृत सिंह जिमि तेहि सिर बायस बोलि॥

[६२९]

यः स्वभावोहि यस्यास्ते स नित्यं दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम्॥

निज सुभाउ नहि तजइ कोउ केतिक किये उपाउ।
कुकुर राजा कियेउ किमि पनही पाइ न खाउ॥

[६३०]

सति शीले गुणा भान्ति पुंसां शोर्यादयो यथा।
यौवने सदलंकाराः शोभां बिभ्रति सुभ्रुवः॥

सील अछत ही सोहइँ गुन सौरज अरु आन।
जौबन रहत हि दीपइँ जुवतिहिं भूसन-थान॥

[६३१]

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्॥

निज अज्ञता ढकन बिधि मूढन दिय गुन एक।
बिज्ञन केर समाज जहँ तहँ मौनहिं रहिँ टेक॥

[६३२]

महानुभाव-संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
रथ्याम्बु जाह्नवी-सङ्गात्त्रिदशैरपि वन्द्यते॥

संगति पाइ महान् कर को न प्रतिस्ठा पाइ।
मैलो जल गंगा पहुँचि सुरपूजा मँह जाइ॥

[६३३]

अहो दुर्जनसंसर्गान्मान-हानिः पदे पदे।
पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते॥

दुर्जन संगति रहि मिलइ मानहानि सब ओर।
लोहसंग पावक सहइ घनआघात कठोर॥

[६३४]

क्वचिद् विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः।
क्वचिद् वीणाबादः क्वचिदपिच हाहेति रुदितम्॥
क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु।
नं जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः॥

कहुँ बुधजनगोष्ठो कतहुँ सुरामत्तकलहन्त।
बीना बाजत मधुर कहुँ कहुँ हाहा बिलपन्त।।
कहुँ जुवती रमनी कतहुँ जराजरजरित देह।
अमरितमय पुनि गरलमय यहि जग सुख दुख गेह।।

[६३५]

न्यायार्जितधन स्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।
शास्त्रवित् तत्त्ववादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते।।

करइ धनागम न्यायसों शास्त्र-अतिथि सों नेह।
ज्ञानी सतवादी गृही मुक्ति लहि न सन्देह।।

[६३६]

विना कार्येण ये मूढा गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अवश्यं लघुतां यान्ति कृष्णपक्षे यथा शशी।।

बिना प्रयोजन जाइं जे परनिवास मतिमन्द।
लघुता पावइं अवसि ते बहुल पाख जिमि चन्द।।

[६३७]

यो नात्मजे न च गुरौ न च भृत्यवर्गेदीने दयां न कुरुते न च बन्धुवर्गे।
किं तस्यजीवितफलं हि मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते।।

गुरुहिं न सुतहिं न बन्धु नहिं दीनहुँ भृत्यहुँ नाय।
दया करइ, सो काक जिमि जिअइ अधम बलि खाय।।

[६३८]

कृते च रेणुका कृत्या त्रेतायां जानकी तथा।
द्वापरे द्रौपदी कृत्या कलौ कृत्या गृहे गृहे।।

कृतयुग कृत्या रेनुका त्रेता सुता बिदेह।
द्वापर कृत्या द्रौपदी कलिकृत्या प्रति गेह।।

[६३९]

एकतश्चतुरो वेदान् ब्रह्मचर्यं तथैकतः ।
एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः ॥

चार बेद सँग तुलइ जिमि ब्रह्मचरज इक ओर ।
सकल पाप मिलि तुलइ तिमि सुरापान अति घोर ॥

[६४०]

प्रसन्नेन सदाभाव्यं न विषण्णेन जातुचित् ।
विषादपरिभूतात्मापरतोऽप्यभिभूयते ॥

रहु प्रसन्न निसिदिन; कबहुँ उचित न करब बिसाद ।
जो बिसन्न तेहि परिभवइं आनहु दइ अबसाद ॥

[६४१]

उन्नतं मानसं यस्य भाग्यं तस्य समुन्नतम् ।
नोन्नतं मानसं यस्य भाग्यं तस्यासमुन्नतम् ॥

ऊँचो मन कर भागिहू ऊँचो देखो जात ।
नीचो मन कर भागि तिमि कबहुँ न ऊँच दिखात ॥

[६४२]

न कदर्यो भवेन्मर्त्यो नात्युदारश्चसर्वथा ।
कार्यंच समयं वीक्ष्य यद् योग्यं तत्समाचरेत् ॥

होब न भल अति कृपिन पुनि अति उदारहू नाहिँ ।
काज-समय-गति देखि जो उचित सो होब सराहिँ ॥

[६४३]

मृदुभिर्बहुभिः शूरः पुंभिरेको न बाध्यते ।
कपोतपोतकैरेकः श्येनो जातु न बाध्यते ॥

मृदु अनेक मिलि एकहू सूरहिं सकइं न जीत ।
बहु कपोतसावक कियेहु कहुँ इक स्येन सभीत ॥

[६४४]

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

सत्पुरुसन कर राह जो, सब अनुगमन न होइ।
थोरउ तेहि अनुगमन भल, राहिंहि दुख नहिं कोइ॥

[६४५]

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति॥

प्रतिदिन मनुज बिलोकियत चरित जो आपन कीन्ह।
पसुसम वा सत्पुरुससम तिन्ह महँ निज कहँ चीन्ह॥

[६४६]

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्॥

सुजन संग ही बैठिबो संगति करिबो नेक।
मैत्री तथा बिबादहू, दुरजन सँग नहिं एक॥

[६४७]

पठतो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम्।
मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः॥

नहिं मूरख रहि पढ़इ जदि, जपइ त पाप न पास।
मौन रहे नहिं कलह कहुँ, जागत कहँ कोउ त्रास॥

[६४८]

गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।
यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि॥

बयस बितेउ बिद्या पढ़इ बुधजन सब बिधि चाहिं।
सुलभ सो जनमान्तर जदपि इह जीवन फल नाहिं॥

[६४६]

यस्य चाप्रियमन्विच्छेत् तस्य कुर्यात् सदा प्रियम् ।
व्याधा मृगवधं कर्तुं सम्यग्गायन्ति सुस्वरम् ॥

जाको अहित करन चहइ सदा तासु प्रिय साध ।
मृगबध इछुक कूर जिमि सुस्वर गावहि ब्याध ॥

[६५०]

प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहृत्यापि प्रियोत्तरम् ।
अपि चास्य शिरश्छित्त्वा रुद्याच्छोचेत्तथापिच ॥

मारन होइत प्रिय कहइ मारिउ करिप्रिय बोलि ।
सिरहु काटि करि रोवई सोक दिखावइ खोलि ॥

[६५१]

चिन्तनीया हि विपदामादावेवप्रतिक्रियाः ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वन्हिना गृहे ॥

पहिलेहि सोचब उचितभल बिपतिनकर प्रतिकार ।
आगि लगे घर खनब तब कूप होत बेकार ॥

[६५२]

अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यतिमानात् सुयोधनः ।
बिनष्टो रावणो लौल्यादति सर्वत्र वर्जयेत् ॥

करि अतिदान बँध्यो बलि, दुरयोधन अति दर्प ।
रावन अतिसय कामवस वरजिय अति जिमि सर्प ॥

[६५३]

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥

कुंजर छुइउक मारई सुंघिउक घातइ सांप ।
हँसिउक नरपति अन्तकरि मनिउकदुरजन पाप ॥

[६५४]

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

काब्य सास्त्र चरचा करत बितइ काल धीमन्त ।
मूढ़ गँबाइय समय परि ब्यसन नींद कलहन्त ॥

[६५५]

अवृत्तिकं त्यजेद्देशं वृत्तिं सोपद्रबां त्यजेत् ।
त्यजेन्मायाविनं मित्रं धनं प्राणहरं त्यजेत् ॥

तजिय देस जँह बृत्ति नहिं, बृत्ति जो बाधा धारि ।
मायावी मीतहु तजिय, धनहु जो प्रान पहारि ॥

[६५६]

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समंफलम् ।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्रहन्यते ॥

गन-अगुवाई भल नहीं, स्रेय सबहिं जदि लाहु ।
काजहानि जदि होइ कहुं, अगुवा मारा जाहु ॥

[६५७]

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥

धनिक, बैद, पँडित, नदी, राजाहू जेहि गाँव ।
नाहिं सुलभ ये पाँच जदि, दिवस न बसि तेहि ठाँव ॥

[६५८]

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः ।
नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥

एक पैर सों चलत बुध दूसर राखत रोपि ।
अगिल ठौर पाये बिना पछिल ठौर नहिं लोपि ॥

[६५९]

सर्वथा संत्यजेद् वादं न कंचिन्मर्मणि स्पृशेत् ।
सर्वान् परित्येदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥

तजिय बिबाद सबहिं बिधि केहु कर मरम न दाहि ।
जो स्वाधाय बिरुद्ध लगि तजिय अरथ सब ताहि ।।

[६६०]

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।
अतः श्वःकरणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान् ॥

कल्हि केहिकर का होइगो कोउ नहिं जानत आज ।
तेहि ते बुध निपटावहीं आजहिं कल्हि के काज ।।

[६६१]

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नैकशय्यासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

जननी भगिनी संग कहुँ दुहिताहू सँग नाहिं ।
एकासन बैठब, बली इन्द्रिन बुधहुँभ्रमाहिं ।।

[६६२]

परदार-परद्रव्य-परद्रोह-पराङ्मुखः ।
गङ्गा ब्रूते कदागत्य मामयं पावयिष्यति ॥

परद्रोह परदार सों परधन सों नहिं प्रेम ।
गंगहु पावन करइं ते छुइ तेहि कवनउ नेम ।।

[६६३]

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥

सुरापान, गुरुतियगमन, ब्राह्मनबध अरु स्तेय ।
चारि महापातक कह्यो तेहिसंसरगिउ हेय ।।

[६६४]

कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याञ्चां मानहारिणीम् ।
बलिप्रार्थनया प्राप लघुतां पुरुषोत्तमः ।।

नीचजनोचित जाचना करिय न मानबिनासि ।
बलिसों करि जाचना स्वयं बामनभो अबिनासि ।।

[६६५]

अप्युन्नतपदारूढः पूज्यान्नैवापमानयेत् ।
नहुषः शक्रतां प्राप्य च्युतोऽगस्त्यावमाननात् ।।

केतिक उन्नत पाइ पद पूज्यहिं नहि अपमानि ।
नहुस इन्द्रपदसों गिरयो मुनि अगस्त्य अवमानि ।।

[६६६]

नदीनां नखिनां चैव शृङ्गिणां शस्त्रधारिणाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां राजकुलस्यच ।।

नदी, नखी, सृङ्गी तथा सस्त्रधारि जो होइ ।
नारिहुँ, राजकुलहुँकर नहिं विस्वासिय कोइ ।।

[६६७]

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।।

सुनि जदि मीठो बचन सब प्रानी पावइं तोस ।
तेहितेप्रिय ही बोलियो बचन को दारिद दोस ।।

[६६८]

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् ।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ।।

धरमी कहँ पसु पंछिहू सुख-दुख होइं सहाइ ।
कुपथ चलत कँह तजइं पुनि सोदरहू प्रियभाइ ।।

[६६९]

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥

सुधा गरल तें, असुचितें सुबरन गहि करि जत्न ।
नीचहुँते बिद्या बिमल दुस्कुलहूँ तियरत्न ॥

[६७०]

खरं श्वानं गजं मत्तं रण्डांच बहुभाषिणीम् ।
राजपुत्रं कुमित्रं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥

गरदभ, कूकुर, मदपिये, गज, रंडा बाचाल ।
राजपूत, कुमीनहूँ, दूर ते तजिय सँभाल ॥

[६७१]

जपन्तं जलमध्यस्थं दूरस्थं धनगर्वितम् ।
अश्वारूढ मजानन्तं षड् विप्रान्नाभिवादयेत् ॥

जपमँह जलमँह, अस्वपर दूरस्थित, धनमत्त ।
नहि पहिचानि जो, इन छवहुँ अभिवादन न प्रसस्त ॥

[६७२]

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्य श्चोत्तरदायकः ।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेवन संशयः ॥

नारि करकसा मीत सठ, सेवक उत्तरकारि ।
साँप सहितघर बास पुनि मृत्यु न सकि कोउ टारि ॥

[६७३]

निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।
न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग् यादृक् कांस्ये प्रजायते ॥

बिना सार जो बस्तु तेहि आडबर अति पाइ ।
सुबरन तादृस ध्वनि न करि जादृस कांस सुनाइ ॥

[६७४]

मासि मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोरुभयोरपि ।
तत्रैकः शुक्लपक्षोऽभूद् यशः पुण्यैरवाप्यते ।।

सम प्रकास दुहुँ पाख मँह ससिकर बारह मास ।
एक सुक्ल एक कृस्न भो पुन्नि सों जस मिलि पास ।।

[६७५]

शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतलङ्घनम् ।
शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पञ्चैतानि शनैः शनैः ।।

सनै पन्थ कन्था सनै सनै सो गिरि आरोह ।
बित्त सनै बिद्या सनै पाँच सनै फल दोह ।।

[६७६]

मक्षिका मशको वेश्या मूषको याचकस्तथा ।
ग्रामणीर्गणकश्चैव सप्तैते परभक्षकाः ।।

माछी, बेस्या, जोतिसी, जाचक, नापित, मूस ।
मसक सात ये जियत हैं सदा परायेहिं चूस ।।

[६७७]

उदारस्य तृणं वित्तं शूरस्य मरणं तृणम् ।
विरक्तस्य तृणं भार्या निःस्पृहस्य तृणं जगत् ।।

जो उदार धन ताहि तृन, सूर मरन तृन लेखि ।
तृन बिरक्त कँह नारि अरु निस्पृह जग तृन देखि ।।

[६७८]

लुब्धानां याचकः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुर्मूर्खाणां बोधको रिपुः ।।

लोभिहिं जाचक रिपु लगै, चोर ससिहिं रिपु जानि ।
कुलटा पतिहिं, प्रबोधकहिं मुरख सत्रु निज मानि ।।

[६७९]

शीलभाखती कान्ता, पुष्पभाखती लता।
अर्थभाखती वाणी, भजते कामपि श्रियम् ॥

प्रिया सील के भारसों लता कुसुम के भार।
बानी अरथ के भारसों अद्भुत लहइ निखार ॥

[६८०]

लक्ष्मीर्न या याचकदुःखहारिणी विद्या न याप्यच्युतभक्तिकारिणी।
पुत्रो न यः पण्डितमण्डलाग्रणीः सा नैव सा नैव स नैव नैव ॥

सिरी न जाचक दुख हर्‌यौ, बिद्या भगति न दीन।
पूत न भा बुध-अग्रनी नाम मात्र कहँ तीन ॥

[६८१]

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टः, रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयंकरः ॥

छन प्रसन्न, छन रुस्ट दिख, छन-छन रुस्ट प्रसन्न।
अस्थिरचित कर हरसहू करइ भीत अवसन्न ॥

[६८२]

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥

समरथ कँह अति भार को ब्यवसायिहि को दूर।
को बिदेस सदविद्य कँह प्रियबादिहि को घूर ॥

[६८३]

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

बिपतिपन्थ बुधजन कह्यो इन्द्रिन्ह जित्यौ न काउ।
संपतिपथ तिन्ह जीतबो जो भावै तेहि जाउ ॥

[६८४]

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्य-काले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ॥

बिद्या जो पुस्तकधरी परअधीन धन जौन ।
काज पड़े नहिं साधि किछु ऊ बिद्या धन तौन ॥

[६८५]

अमृतं शिशिरे वन्हिरमृतं प्रियदर्शनम् ।
अमृतं राजसम्मानममृतं क्षीरभोजनम् ॥

सिसिर आगि अमरित लगइ, अमरित नृप-सम्मान ।
प्रियदरसन अमरित लगइ अमरित छीरहुपान ॥

[६८६]

न मां कश्चिद् विजानीत इति कृत्वा न विश्वसेत् ।
नरो रहसि पापात्मा कुर्वाणः कर्म पापकम् ॥

नहिं देखइ नहिं जानि कोइ असमति नहिं तिन्ह जोग ।
पाप करत एकान्त महिं जे जग पापी लोग ॥

[६८७]

कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा ।
पश्यन्ति ऋतवश्चापि तथा दिननिशे प्युत ॥

पाप करत एकान्त महँ नर कँह ताकइं तीन ।
दिवस, राति अरु रितु सकल, साखी तिन्ह बिधि कीन ॥

[६८८]

तस्मात्तडागे सद्वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽर्थिना सदा ।
पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः ॥

रोपिय सदा तडाग तट फलद रूख सुभ चाहि ।
सुत समान तिन्ह पालियत धरम सों सुत ते आहिं ॥

[६८९]

तस्मात्ताडागंकुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् ।
यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत् ।।

करि तडाग निरमान पुनि रोपिय बाग उदार ।
जाग करिय बहु विधि सदा साँची बानी धार ।।

[६९०]

आचाराल्लभते ह्यायु राचाराल्लभतेश्रियम् ।
आचारात् कीर्ति माप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ।।

सदाचार करि लहइ नर दीरघ आयुहि भूरि ।
सदाचारसों ही लहइ कीरति दूहु जग पूरि ।।

[६९१]

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः ।
साधूनां च यथावृत्ता मेतदाचारलक्षणम् ।।

धरम केर अरु सन्तकर लच्छन सत् आचार ।
सन्तन कर आचरन जो कहिय सो सत् आचार ।।

[६९२]

लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।
नित्योच्छिष्टः संकुसको नेहायुर्विन्दते महत् ।।

नख चबाइ, तृन तोरई, ढेला फोरि सुभाउ ।
सदाजूठ, अस्थिर सदा दीरघ आयु न पाउ ।।

[६९३]

नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ।।

उदय अस्त रबि होत जब गहनगसितवा होइ ।
जलबिच वा अकास बिच चमकत दिखिय न सोइ ।।

[६६४]

नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ।।

यहिसम आयु बिनासक जग बिच आन न देखि ।
जस संगम परदार सँग नर अभागिकर पेखि ।।

[६६५]

प्रसाधनं च केशानां मज्जनं दन्तधावनम् ।
पूर्वान्हि एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ।।

स्नान, दन्तधावन पुनि केसन केर बनाव ।
देवन कर पूजन तथा पूरवान्हहिं भलपाव ।।

[६६६]

पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ।।

नृपति, बिप्र, गौ, बृद्ध कहँ भारातुर कँह देखि ।
दुरबल कँह, गर्भिनिहुं कहँ मारग देब सरेखि ।।

[६६७]

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ।।

कर्नि, नलीक, नराचहूँ देह धंसो सकि काढ़ि ।
बचन बान पर हिय धँस्यो कढ़इ न पीडा बाढ़ि ।।

[६६८]

न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च ।
नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यंक् कदाचन ।।

टूटी, झिलँगी सेज जो, जोड़ी, तिरछो होइ ।
अँधियारे मँह बिछी जो तेहि पर कबहुँ न सोइ ।।

[६९९]

न नग्नः कर्हिचित् स्नायान्न निशायां कदाचन।
स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः।।

कहुँ न नहाइय नगन होइ रातिहूँ महँ न नहाइ।
सुविचच्छन कर रीति यहु न्हाइ न तेल लगाई।।

[७००]

निषण्णश्चापि खादेत नतु गच्छन् कदाचन।
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे।।

भोजन आसन बैठ करि खड़े चलत नहिं खाउ।
गोसाला महँ भसममहँ, खड़ेउ न मेहिय काउ।।

[७०१]

नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्।।

एक वस्त्र धरि खाइ नहिं, नगन न कबहुँ नहाय।
नगन न सोइय कबहुँ तिमि जूठो सोइय नाय।।

[७०२]

गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर।।

गुरुसन हठ न करिय कबहुँ रखु प्रसन्न तेहि नित्त।
क्रुद्ध होइ गुरु जदपि तउ अनुमानिय तेहि मित्त।।

[७०३]

परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना।।

पर अपवाद न बोलु कहुँ अप्रिय हूँ नहि बोलु।
जग कल्यान जो चाहईं क्रोध न कबहुँ खोलु।।

[७०४]

पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता ।
वर्जनीयाश्चैव नित्यं सक्तवो निशि भारत ॥

निसाकाल जलपानकर बिधि बुध नहिं भल मान ।
निसि मँह सत्तू खाब तिमि उचित न कहँहि सयान ॥

[७०५]

प्राङ्मुखः श्मश्रुकार्याणि कारयेत् सुसमाहितः ।
उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथायुर्विन्दते महत् ॥

पूरब मुख करवाइयत छौरहिं होइ सुचित्त ।
उत्तरमुखहू भल कह्यौ आयु बढावन मित्त ॥

[७०६]

मातुः पितुः गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।
हितं वाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ ॥

मातु पिता गुर केर नित आज्ञा धरि हिय मानि ।
हित वा अनहित सोच नृप करब उचित न जानि ॥

[७०७]

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥

परधन कर अपहरन, अरु परदारासंभोग ।
सुहृदहुँ कर परित्याग ये दोस करहिं छयजोग ॥

[७०८]

मृदुनैवमृदुं छिन्धि मृदुना हन्ति दारुणम् ।
नासाध्यः मृदुना किञ्चित्तस्मात्तीक्ष्णतरोमृदुः ॥

मृदुते ही मृदु क्राटियत मृदु दारुनहू नासि ।
मृदु कँह किछू असाधि नहिं अधिकतीख मृदु भासि ॥

[७०९]

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ।।

सहसधेनु बिच बच्छ जिमि निज जननिहिं पहँ जाइ ।
तिमि जो पूरब करम किय सो करतहिं अनुधाइ ।।

[७१०]

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्यचवर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ।।

नहिं अभ्यासेउ बेद भल सदाचार नहिं पालि ।
आलस, भोजन अधमघर किये मीचु द्विज घालि ।।

[७११]

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीहलोके कलुषयोनिजम् ।।

निस्ठुर कूर असभ्य अरु अनाचार नर देखि ।
नीच जोंनि सों जात तेहि बुधजन ध्रुवकरि लेखि ।।

[७१२]

अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम् ।
कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम् ।।

उत्साहीचित, कुसलता, मन जो हार न मानि ।
कारजसिद्धिकरनहित, गुन इन्ह पंडित जानि ।।

[७१३]

अश्वमेधसहस्त्रं च सत्यं च तुलयाधृतम् ।
अश्वमेधसहस्त्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।।

सहस अस्वमेधहिं धरिय तुला सत्य इक ओर ।
सत्यहि पलरा गुरु परइ, अस्वमेध लगि थोर ।।

[७१४]

आपत्काले च संप्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत् ।
स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचारेत् ॥

विपत् परे नर अधिक तब, सौचाचार न सोचि ।
धर्माचरन बहुरि करिय पहिले अपुनेहिं मोचि ॥

[७१५]

आयुः श्रियं यशोधर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥

किय अपमान जो गुरुनकर, आयु, सिरी, जस, धर्म ।
दुहूँ लोक, आसीस सुभ नसइं स्रेय, सुभ कर्म ॥

[७१६]

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥

थकि पुनि थकि पुनि करम करि करम न त्यागिय भूलि ।
करम करत नर कर सकल सिधि झारइं पग धूलि ॥

[७१७]

कुलेजन्म तथा वीर्यमारोग्यं रूपमेव च ।
सौभाग्यमुपभोगश्च भवितव्येन लभ्यते ॥

सत्कुलजनम, सुरूप, बल, नीरोगता, सुभागि ।
उपभोगहु नर पाइ सब भवितव्यता जो जागि ॥

[७१८]

अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ।
एतै र्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न सँशयः ॥

सुरा सुन्दरी द्यूत अरु मृगया मँह भरपूर ।
डूबि सकलविधि अधमनर छय तें अधिक न दूर ॥

[७१९]

पण्डितेन विरुद्धः सन् दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ।।

बुद्धिमान सँग बैर करि दूरहु बसि न बिसासि ।
बुद्धिमानकर बाहु बड़ दूरहु पहुँचि विनासि ।।

[७२०]

पुस्तके प्रज्ञयाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
न भ्राजन्ते सभामध्ये जारगर्भा इव स्त्रियः ।।

पुस्तक सों पढ़ि ज्ञान लइ गुरु ढिग बैठि न सीख ।
सभामध्य नहिं सोहि जिमि जारगरभ तिय दीख ।।

[७२१]

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम् ।।

बित्त, बन्धु, बय, करम अरु बिद्या पंचम जानि ।
गौरबप्रदता इन्हँन कर उतरोत्तर अधिकानि ।।

[७२२]

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।।

पूरन जो सो छीन होइ उन्नत पतन समाइ ।
अन्त बिरह संयोग कर, जिवनहु मरन बिलाइ ।।

[७२३]

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति ।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति ।।

संसय महँ बिनु किये जिउ नर न लहइ उत्थान ।
संसय थिति अपनाइ जदि जियइ त बनइ महान ।।

[७२४]

लक्ष्मी र्वसति वाणिज्ये तदर्धं कृषिकर्मणि ।
तदर्धं राजसेवायां भिक्षायां नैव नैव तु ।।

वानिज लछिमी पूरबसि, कृसि मँह बसि तेहि आधि ।
तेहिआधी नृप-नौकरी भीख न किछु सिरि साधि ।।

[७२५]

लाभालाभे सुखे दुःखे विवाहे मृत्यु-जीवने ।
भोगे रोगे वियोगे च दैवमेह हि कारणम् ।।

लाभहानि जीवनमरन सुखदुख भोग बिबाह ।
रोग बियोगहु सबहिँ कर हेत एक बिधिचाह ।।

[७२६]

वश्यश्चपुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसंगतिश्च ।
इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ।।

बस्य पुत्र, बिद्या धनद, सजनसंग, आरोग ।
प्रिय पतिनी बसबर्तिनी, पँच दुखनासन जोग ।।

[७२७]

विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च ।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो नरः प्राप्नोति गौरवम् ।।

बिद्या, बपु, बानी, बिभव, बस्त्रहु उत्तम जाहि ।
पाँच बकार बिराजहीं तेहि नित गौरव लाहि ।।

[७२८]

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ।।

बिद्वज्जन जो स्रम करइ सो बिद्वानहि मानि ।
तीब्र बेदना प्रसव कह बाँझ नारि किमि जानि ।।

[७२९]

शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते ।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम् ।।

दंड पाइ वा छूटि वा चोर न अघ रहि सेस ।
किन्तु न दंड्यौ अघिहिं जो अघ सो नृपहिं असेस ।।

[७३०]

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ।।

सोई भार उठाइबो जेहिते खेद न होइ ।
अन्नहु वाही खाइबो रोग न करि पचि जोइ ।।

[७३१]

शीतेऽतीते वसनमशनं वासरान्ते निशान्ते
क्रीडारम्भं कुवलयदृशां यौवनान्ते विवाहम् ।
सेतोर्बन्धं पयसि चलिते वार्द्धके तीर्थयात्रां
वित्तेऽतीते वितरणमतिं कर्तुमिच्छन्ति मूढाः ।।

सीत बितइ ओढन-बसन, भोजन दिवस बिताइ ।
सुमुखि-ब्याह जौवन ढले, क्रीडा राति गँवाइ ।।
जल बहिगो तब सेतुबँध, तीरथ चलि होइ बूढ़ ।
धन बीतो तो दानमति करन चहहिं नर मूढ़ ।।

[७३२]

या राकाशभिशोभना गतघना सा यामिनी यामिनी
या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी ।
या गोविन्द-रस-प्रमोद-मधुरा सा माधुरी माधुरी
या लोकद्वयसाधिनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी ।।

पूरन ससि निरमेघ नभ रजनी सोइ जुन्हाइ ।
रूपरासि गुनरासि पतिबरता नारि सुहाइ ।।
कृस्न-भगति-रस-मधुर-सुख-पूर माधुरी धन्य ।
जो दुहुँलोक सँवारि सकि सोइ चातुरी न अन्य ।।

[७३३]

किं चित्रं यदि राजनीतिकुशलो राजा भवेद् धार्मिकः
किं चित्रं यदि वेदशास्त्रनिपुणो विप्रो भवेत् पण्डितः।
किं चित्रं यदि रूपयौवनवती साध्वी भवेत् कामिनी
तच्चित्रं यदिनिर्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्यात् क्वचित् ॥

भूप कुसल नृपनीति जदि धार्मिक, अचरज नाहिं
द्विज जदि पंडित सास्त्रविद्, कोउ अचरज नाहिं।
अचरज नहिं जदि सुन्दरी जुवति पतिव्रतहोइ
अचरज जब निरधन पुरुस पाप करत नहिं कोइ ॥

[७३४]

का विद्या कविता विनाऽर्थिनि जने दानं विना श्रीश्च का
को धर्मः कृपया विना क्षितिपतिः को नाम नीतिंविना।
कः सूनु र्विनयं विना कुलवधूः का स्वामिभक्तिं विना
भोग्यं किं रमणीं विना क्षितितले किं जन्म कीर्तिं विना ॥

बिनु कबिता बिद्या नहीं, दान बिना सिरि झूठ।
बिना दया को धरम जग, नीति बिना नृप ठूठ ॥
बिनय बिना को सूनु, पति-भगति बिना को दार।
बिनु रमनी को भोग, बिनु कीरति जनम नकार ॥

[७३५]

स्त्रीणां यौवनमर्थिनामनुगमो राज्ञां प्रतापः सतां
स्वास्थ्यं स्वल्पधनस्य संहतिरसद्वृत्तेश्च वाग्डम्बरः।
स्वाचारस्य सदर्चनं परिणतेर्विद्या कुलस्यैकता
प्रज्ञाया धन मुन्नतेरतिनतिः शान्तेर्विवेको बलम् ॥

तिय बल जौवन, अनुगमन जाचक बल प्रतिमूर्त।
नृप प्रतापबल, दुश्चरित बाग्डम्बरबल धूर्त ॥
सज्जन स्वास्थ्य, गरीबबल संघ, बुद्धिबल बित्त।
बिद्या बृद्धमनुस्यबल सदाचार सत्चित्त ॥
कुल बल ऐक्य, बिनति पुनि उन्नतिबल बुध जान।
सान्ति केर बल जगत मँह एक बिवेक न आन ॥

[७३६]

आयाते च तिरोहितो यदि पुनर्दृष्टोऽन्यकार्यैरतो
वाचि स्मेरमुखो विषण्णवदनः स्वक्लेशवादेमुहुः।
अन्तर्वेश्मनि वासमिच्छति भृशं व्याधीति यो भाषते
भृत्यानामपराधकीर्तनपरस्तन्मन्दिरं न व्रजेत् ॥

आवत अन्तरहित भयौ, दिखयौ त कारजलीन।
मिलि मुसुकाइ, उदासमन, कहि निज क्लेस मलीन॥
घरभीतर पुनि घुसन चह निजबहु ब्याधि सुनाइ।
भृत्यन कँह अपराध कहि तेहि घर कबहुँ न जाइ॥

[७३७]

ख्यातः शक्रो भगाङ्को, विधुरपि मलिनो, माधवो गोपजातो,
वेश्यापुत्रो वसिष्ठो रतिपतिरतनुः, सर्वभक्षी हुताशः।
व्यासो मत्स्योदरीयो, लवणजलनिधिः पाण्डवा जारजाता
रुद्रः प्रेतास्थिधारी, त्रिभुवनविषये कस्य दोषो न चास्ति॥

इन्द्र भगांकी, बिधु मलिन, माधव गोपीजात।
बेस्यापूत बसिष्ठ पुनि, काम अदेह सुनात॥
अगिनि सर्वभच्छी भयो, मच्छोदरिसुत ब्यास।
जलनिधि खारो, पांडवन जारतनय जगहास॥
सिव सवअस्थि धरइं करइं असुभ मसान निवास।
त्रिभुवन बिच कोउ नहिं दिखै जाहि दोस नहिं पास॥

—:o:—

अन्योक्तिसूक्तिखण्ड

मेघ

[७३८]

त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः ।
अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेऽपि संशयः ।।

बारिद, बरसत तुम्हहिं नव पल्लव द्रुमन्ह लहाहिं ।
हमन अभागे अरक कँह पात पुरानउँ जाहिँ ।।

[७३९]

आसन् यावन्ति याच्ञासु चातकाश्रूणि चाम्बुद ।
तावन्तोऽपि त्वया मेघ न मुक्ता वारिबिन्दवः ।।

अम्बुद जाचत चातकहिं गिरयौ अस्रुकन जेति ।
तेतिउ जलकन ना दियो, काह बड़ाई लेति ।।

[७४०]

आपो विमुक्ताः क्वचिदाप एव क्वचिन्न किंचिद् गरलं क्वचिच्च ।
यस्मिन् विमुक्ताः प्रभवन्ति मुक्ताः पयोद तस्मिन् विमुखः कुतस्त्वम् ।।

बारिद पड़ि जल कहुँ जलहि, कहुँहोइ गरल कराल ।
जँह पड़ि सुचि मोती बनइ तहँ कस बूँद न डाल ।।

[७४१]

पानीयमानीय परिश्रमेण पयोद पाथोनिधिमध्यतस्त्वम् ।
कल्पद्रुमे सीदति साभिलाषे महोषरे सिञ्चसि किंनिमित्तम् ।।

करि स्रम आनेसि जल जलद जाइ पयोधि मँझारि ।
कल्पद्रुम रहि सूख कस सींचसि ऊसर वारि ।।

[७४२]

पपात पाथःकणिका न भूमाववाप शान्ति ककुभां न तापः।
दृष्टोऽपि जीवातुरयं तडित्वान् कृषीवलानां मुदमाततान ।।

गिरचो बूँद नहिं भूमि पर भयौ सान्त नहिं ताप।
दिखतइ जलदायिनि घटा, कृसक हरस को माप ।।

[७४३]

यत्पल्लवः समभवत् कुसुमं यदासीत् तत्सर्वमस्य भवतः पयसः प्रसादात्।
यद् भूरुहे फलविधौ न ददासि वारि प्राचीनमम्बुद यशो मलिनीकरोषि ।।

अम्बुद तव जल सों भयो पल्लव-कुसुम-बिकास।
जल न देहु फलसमय जदि, होइ पूरब जसु नास ।।

[७४४]

वातैर्विधूनय विभीषय भीमनादैः संचूर्णय त्वमथवा करकानिपातैः।
त्वद्वारिबिन्दुपरिपोषितजीवितस्य नान्या गतिर्भवति वारिद चातकस्य ।।

झंझा, करका, गरजि किन, मेघ झोंकि डरपाउ।
पोसित तव जलबिन्दुतें चातक कहँ तजि जाउ ।।

[७४५]

निष्पद्मं शिशिरेण धीवरगणैर्निर्मत्स्यनिःकूर्मकं
व्याधैर्निर्विहगं निरम्बुरविणा निर्नालकं दन्तिभिः।
निःशालूकमकारि शूकरगणैर्नामैकमात्रं सरो
हे जीमूत परोपकारक पयोदानेन मां पूरय ।।

कुरम मीन धीवर हरचौ, सिसिर कमल हरि लीन्ह।
बधिक खगन, रवि जल हरचौ, गज निरनालक कीन्ह ।।
सूकर सब सालूक हरि, नाममात्र सर सेस।
हे पयोद, पयबरसि मोहिं पुरवहु बहुरि असेस ।।

[७४६]

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि ।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः ।।

तपन तप्त गिरि सीत दइ, दावदहेउ वन सान्ति ।
नदीनदहिं जल पूरि करि जलद रिक्ति तव कान्ति ।।

[७४७]

यत्रोषितोऽसि चिरकालमकिञ्चनः स-
न्नर्णःप्रतिग्रहधनग्रहणाधमर्णः ।
निर्लज्ज गर्जसि समुद्रतटेऽपि तत्र
धृष्टोऽधमस्तव समो घन नैव दृष्टः ।।

जहँ निरधन बनि जल लियो बन्यो रिनी अतिदीन ।
तेहि समुद्रतट गरजहु मेघ न लाज मलीन ।।

—:०:—

भ्रमर

[७४८]

क्वचित् क्वचिदयं यातु स्थातुं प्रेमवशंवदः ।
न विस्मरति तत्रापि राजीवं भ्रमरो हृदि ।।

प्रेमदिवानो भ्रमर यहु जँह कहुँ करइ निवास ।
कतहुँन भूलइ हृदयतें प्रिय पद्मिनीसुबास ।।

[७४९]

कृत्वापि कोशपानं भ्रमरयुवा पुरत एव कमलिन्याः ।
अभिलषति बकुलकलिकां मधुलिहि मलिने कुतः सत्यम् ।।

भ्रमर जुवा करि कमलिनी-कोसपान होइ पीन ।
बकुलकली चाहत फिरइ मधुप चरित्र-मलीन ।।

[७५०]

अमरतरुकुसुमसौरभसेवनसम्पूर्णकामस्य ।
पुष्पान्तरसेवेयं भ्रमरस्य विडम्बना महती ॥

कल्पद्रुम-कुसुमावली-सौरभ छकि सम्पुस्ट ।
अन्य कुसुमकर गन्ध किमि मधुपहिं करि सन्तुस्ट ॥

[७५१]

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनी-मकरन्द-मदालसः ।
विधिवशात् परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥

छकि नलिनीरस पद्मनीदलबिच भ्रमि इठलान ।
बिधिबस मधुप बिदेस सोइ कुटजरसहुँ बहुमान ॥

[७५२]

निरानन्दः कौन्दे मधुनि विधुरो बालबकुले,
न साले सालम्बो लवमपि लवङ्गे न रभते ।
प्रियङ्गौ नासङ्गं रचयति न चूतेऽपिरमते
स्मरल्लक्ष्मीलीलाकमलमधुपानं मधुकरः ॥

कुंद लवंग प्रियंगु अरु बकुल रसालहु साल ।
कतहुँन मधुकर सुख लहइ सुमिरि कमल बेहाल ॥

[७५३]

अनुसरति करिकपोलं भ्रमरः श्रवणेन ताड्यमानोऽपि ।
गणयति न तिरस्कारं दानान्धविलोचनो नीचः ॥

करनतालताडितभ्रमर गजकपोल पछिआइ ।
दानलाभअन्धितदृगहिं अपमानहु न जनाइ ॥

[७५४]

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग लोलं विलोलय मनः सुमनोलतासु ।
बालामजातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥

कुसुमबल्लरी अउर हइं भ्रमर जो सहि तव केलि ।
मधुपराग बिनु कली यहि नवमल्ली न झमेलि ॥

[७५५]

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचन्तयति कोषगते द्विरेफे हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

राति बिते रबि उदय पुनि पंकज हँसिहि प्रभात।
कोसबन्द सोचत भ्रमर नलिनिहिं गज किय घात ॥

[७५६]

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै दूरीकृताः करिवरेण मदान्दबुद्धया।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥

दानार्थी मधुकरहिं गजकरन ताल किय दूरि।
सोभा गइ गजगंडकी मधुप वनज-बन पूरि ॥

[७५७]

अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्यचूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोस्येनां कथम् ॥

अभिनव मधुलोलुप मधुप आममंजरी चूमि।
पाइ कमलिनीबनबसति भूल्यौ यहि सुखभूमि ॥

—:o:—

मयूर

[७५८]

अहमस्मि नीलकण्ठस्तव खलु तुष्यामि शब्दमात्रेण।
नाहं जलधर भवत श्चातक इव जीवनं याचे ॥

सबदमात्रसों जलद तव होइ मयूरहिं प्रीति।
चातकजिमि तव माँगिबो जीवन नहिं तिन्ह रीति ॥

—:o;—

चातक

[७५९]

एक एव खगो मानी वने वसति चातकः।
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥

मानी चातक खगसरिस बनमँह और न दीख।
प्यासो जो मरि जाइ वा माँगि पुरन्द्रहिं भीख ॥

[७६०]

आकस्मिककणैः प्राणान् धारयत्येव चातकः।
प्रार्थनाभङ्गभीतोऽसौ शक्रादपि न याचते॥

यादृच्छिक जलबूँद पिय जोवत चातक बीर।
भीत प्रार्थनाभंग निज इन्द्रहुँ जाचि न धीर॥

—:०:—

हंस

[७६१]

एकेन राजहंसेन या शोभा सरसो भवेत्।
न सा बकसहस्रेण परितस्तीरवासिना॥

राजहंस इकलउ करइ सरसिहिं सोभा जौन।
तीर बसत एक सहस बक करि न सकइँ कहुँ तौन॥

[७६२]

रे राजहंस किमिति त्वमिहागतोऽसि योऽसौ बकः स इह हंस इति प्रतीतः।
तद् गम्यतामनुपदेन पुनः स्वभूमौ यावद् वदन्ति न बकँ खलु मूढलोकाः॥

राजहंस कस तुम ? इहाँ बकही हंस कहाइ।
तुरत लौटु कहुँ मूढ कोउ तुम्हहि न बक कहि जाइ॥

[७६३]

कस्त्वं लोहितलोचनास्यचरणो ? हंसः, कुतो ? मानसात्।
किं तत्रास्ति ? सुवर्ण-पङ्कजवनान्यम्भः सुधासन्निभम्
रत्नानां निचयाः प्रवालमणयो वैदूर्यरोहाः। क्वचि
च्छम्बूका अपि सन्ति ? नेति च बकैराकर्ण्य हीही कृतम्॥

को तुम लोहित मुख चरन ? हंस। कहाँ ते आइ ?
मानसतें। तँह का मिलइ ? रतनप्रवाल सुहाइ॥
हेमकमल, अमरितसलिल। कहुँ सम्बूकहु बास ?
नहिं। बक ही ही करि हँस्यौ सुनि मनहंस उदास॥

[७६४]

प्रम्लाना नलिनी जलानि किरणैः सूर्यस्य शोषं ययु
र्नाशं प्राप विहंगमावलिरियंतृष्णाविशीर्णेक्षणा।
एतेतीरमहीरुहा अपि पतत्पत्रश्रियोऽद्यापि रे
कोऽयं राजमराल शुष्कसरसीतीरे रतिप्रक्रमः ।।

मलिन कमलिनी, सूखिजल रविकर चंड प्रताप।
प्यास बिकल बिहगावली अन्तर्हित भइ आप ।।
तीर महीरुहपत्रगिरि सोभा गइ अलबेलि।
सूख सरोबर तीर तउ राजहंस कस केलि ?

[७६५]

क्रुद्धोलूकनखप्रपातविगलत्पक्षा अपि स्वाश्रयं
ये नोज्झन्ति पुरीषपुष्टवपुषस्ते केचिदन्ये द्विजाः।
ये तु स्वर्गतरंगिणी बिसलतालेशेन संवर्धिता
गाङ्गं नीरमपि त्यजन्ति कलुषं ते राजहंसा वयम् ।।

क्रुद्ध उलूक नखावली काटेसि पंख प्रबीन।
तबहुं न आस्रम छोड़ि जे अनत जाहिं कहुँ दीन ।।
ते पुरीसपोसितवपु द्विज अधमाधम और।
मलिन गंगजलहू तजैं राजहंस हम और ।।

[७६६]

हंसोऽध्वगः श्रममपोहयितुं दिनान्ते कारण्डकाकबकभासवनं प्रविष्टः।
मूकोऽयमित्युपहसन्ति लुनन्ति पक्षान् नीचाश्रयो हि महतामवसानभूमिः ।।

काक-भास-बकवन बिरमि हंस पथिक लखिसाँझ।
समुझि मूक उपहसि उन्हहिं, पंखउ तेहिकर भाँजि ।।

[७६७]

गाङ्गमम्बुसितयामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः।
राजहंस तवसैव शुभ्रता चीयते न च नचापचीयते ।।

धवलगंगजल मज्जि पुनि स्याम जमुनजल न्हाइ।
राजहंस तव सुभ्रता बढ़इ न नेकु घटाइ ।।

[७६८]

रूपं हारि मनोहरा सहचरी, पानाय पाद्मं मधु,
क्रीडा चाप्सु सरोरुहेषु वसतिस्तेषां रजोमण्डनम् ।
वृत्तिः साधुमता बिसेन, सुहृदश्चारुस्वनाः षट्पदाः
सेवादैन्यविमाननाविरहितो हंसः सुखं जीवति ।।

रूप सुरूप, मनोरमा पतिनी, पान मरन्द ।
वास सरोरुह, केलि जल, भूस पराग अमन्द ।।
भोजन साधु कमलबिस मीत भृंग मृदु गुंज ।
सेवादैन्यविमानबिनु हंस जीव सुखपुंज ।।

—:o:—

कोकिल

[७६९]

भद्रं-भद्रं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे ।
वक्तारो दर्दुरा यत्र तत्र मौनं हि शोभते ।।

भल कीन्ह्यौ कोकिल गह्यौ पावस आवत मौन ।
जँह दादुर अब बोलि हँइ तहँ मौनहि सुखभौन ।।

[७७०]

शृगालशशशार्दूलदूषितंदण्कावनम् ।
पञ्चमं गायताऽनेन कोकिलेन प्रतिष्ठितम् ।।

सस सृगाल सार्दूल सब दूसित दंडक कीन्ह ।
कोकिल पंचम तान पुनि गाइ प्रतिस्ठा दीन्ह ।।

[७७१]

तावच्चकोरचरणायुधचक्रवाकपारावतादिविहगाः कलमालपन्तु ।
यावद्वसन्तरजनीघटिकावसानमासाद्य कोकिलयुवा न कुहू करोति ।।

चक्रवाक कुक्कुट बिहग पारावतहु चकोर ।
तबहीं तक स्वच्छन्द सब मधुर मचाइय सोर ।।
जबतक लहि न बसन्तरितुरजनीकर अवसान ।
कोकिल जुवा कुहु करइ रसमाधुरीप्रमान ।।

[७७२]

येनोषितं रुचिरपल्लवमञ्जरीषु श्रीखण्डमण्डलरसालवने सदैव।
दैवात् स कोकिलयुवा निपपात निम्बे तत्रापि रुष्टबलिपुष्टकुलैर्विवादः ॥

जो पिक रहेउ रसालवन किसलयबौर बसन्त।
विधिबस आयौ नीम तहुँ रुस्ट काक कलहन्त ॥

:०:—

शुक

[७७३]

अखिलेषु विहङ्गेषु हन्त स्वच्छन्दचारिषु।
शुकपञ्जरबन्धस्ते मधुराणां गिरां फलम् ॥

विहग उड़हिं स्वच्छन्द सब, नभ नहिं काहू रोक।
बन्धन केवल सुकहिं मिलि, मधुर बचनफल सोक ॥

[७७४]

किंशुके शुक मातिष्ठ चिरं भाविफलेच्छया।
भाविरंगप्रसंगेन के के नानेन वञ्चिताः ॥

किंसुक पर सुक बैठि मति जोहहु फल रसपूर।
यहि निज रंग लुभाइ सनु केहि केहि ठगेसि न कूर ॥

[७७५]

द्राक्षां प्रदेहि मधु वा वदने निधेहि देहे विधेहि किमु वा करलालनानि।
जातिस्वभावचपलः पुनरेष कीरस्तत्रैव यास्यति कृशोदरि मुक्तबन्धः ॥

दाख मधुर मधु देउ मुख कर सहलावउ देह।
निर्मम जाति सुभाववस सुक उड़िहै तजि गेह ॥

[७७६]

अमुष्मिन्नुद्याने विहगखल एष प्रतिकलं
विलोलः काकोलः क्वणति खलु यावत् कटुतरम्।
सखे तावत्कीर द्रढय हृदि वाचंयमकलां
न मौनेन न्यूनो भवति गुणभाजां गुणगणः ॥

सखे कीर उद्यान यहि बोलत कटु काकोल।
मौन ते गुनगन नहिं घटहिं ताते किछु मति बोल ॥

[७७७]

इयं पल्ली भिल्लै रनुचितसमारम्भरसिकैः ।
समान्तादाक्रान्ता विषमविषबाणप्रणयिभिः ॥
तरोरस्य स्कन्धे गमय समयं कीर निभृतं ।
न वाणी कल्याणी तदिह मुखमुद्रैव शरणम् ॥

यहि पल्ली बसि भीलगन बान विसैले जाहि ।
कीर बितावहु समय चुप छिपि तरुकोटर माँहि ॥

—:०:—

कपोत

[७७८]

शावान् कुलायकगतान् परिपातुकामा नद्याः प्रगृह्य लघुपक्षपुटेन तोयम् ।
दावानलं किल सिषेच मुहुः कपोती स्निग्धोजनो न खलुचिन्तयते स्वपीडाम ॥

दावानल सों नीड मझि सिसुन बचावन तूरि ।
नदीवारि लघु पंखभरि सींच कपोती भूरि ॥

—:०:—

काक

[७७९]

अहो मोहो वराकस्य काकस्य यदसौ मुहुः ।
सरीसर्ति नरीनर्ति पुरतः शिखिहंसयोः ॥

अहो मूढ़ता काक की पुनि-पुनि जो यहि लेखि ।
अकड़त नाचत फिरत जड़ हंस मयूरहिं देखि ॥

[७८०]

आमरणादपि विरुतं कुर्वाणाः स्पर्धया सह मयूरैः ।
किं जानन्ति वराकाः काकाः केकारवं कर्तुम् ॥

काँव काँव करि मरि गयो केका निकरि न काहु ।
होड़ लगायो मोर सँग काक न पूरी चाहु ॥

[७८१]

काकस्य गात्रंयदि काञ्चनस्य माणिक्यरत्नं यदि चञ्चुदेशे ।
एकैकपक्षे ग्रथितं मणीनां तथापि काको नतु राजहंसः ।।

मनिक चंचु सुबरन वपु पंखन्हि मनि गुथि होइ ।
काक बनिय नहिं हंस तउ लाख करिय किन कोइ ।।

[७८२]

विधिरेव विशेषगर्हणीयः करट त्वं रट कस्तवापराधः ।
सहकारतरौ चकार यस्ते सहवासं सरलेन कोकिलेन ।।

काक रटउ तव दोस नहिं दोस लगइ विधि हाथ ।
जिन्ह रसाल तरु किय सरल कोकिल सँग तव साथ ।।

[७८३]

चित्रंचित्रं बत बत महच्चित्रमेतद् विचित्रं ।
जातो दैवादुचितघटनासंविधाता विधाता ।।
यन्निम्बानां परिणतफलस्फीतिरास्वदनीया ।
यच्चैतस्याः कवलनकलाकोविदः काकलोकः ।।

अहो चित्र बिधि सृष्टि मँह उचित एक संजोग ।
पको नीम फल स्वादु अरु ज्ञाता बायस लोग ।।

—o—

सिंह

[७८४]

एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः ।
स्वप्नेऽप्येवंविधाचिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ।।

एकाकी असहाय हौं दुरबल हौं निरबास ।
स्वप्नेउ कबहुँ मृगेन्द्र अस चिंता आइन पास ।।

[७८५]

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्यक्रियते मृगैः ।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

मृग न कियो अभिसेक मिलि नहिं संस्कार बिधान ।
निज विक्रम अरजित कियो पद मृगेन्द्र बलवान ।।

[७८६]

वयोभिमानादपमानता चेद् विधीयते फेरुजरत्तरेण ।
हेलाहतानेककरीन्द्रसूनोर्हरीन्द्रसूनोर्नहि कापिहानिः ॥

बूढ़ फेरु बयमानवस जदि अवमानेसि जानि ।
हेलाहत्यौ करीन्द्र जिन्हँ का मृगेन्द्रसुतहानि ॥

—०—

गज

[७८७]

बन्धनस्थोहि मातङ्गः सहस्रभरणक्षमः ।
अपि स्वच्छन्दचारीश्वा स्वोदरेणापि दुःखितः ॥

रहि गयन्द बन्धन तऊ सहसउ पालइ भूरि ।
स्वान फिरइ स्वच्छन्द पुनि अपुनउ उदर न पूरि ॥

[७८८]

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं ।
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च ॥
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु ।
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥

पिंडद ढिग गिरि भूमि चित कूकुर पूँछि हिलाइ ।
धीर विलोकि गयन्द बहु चाटु किये पुनि खाइ ॥

[७८९]

निषेवन्तामेते वृषमहिषमेषाश्चहरिणा ।
गृहाणि क्षुद्राणां कतिपयतृणैरेव सुखिनः ॥
गजानामास्थानं मदसलिलजम्भालितभुवां ।
तदेकं विन्ध्याद्रे र्विपिनमथवा भूपसदनम् ॥

थोरइ तृन जो सुख लहइं महिस हरिन बृस मेस ।
छुद्र स्वामि घर बसहिं तिन्ह नहिं तहँ दुख लवलेस ॥
जिन्ह मद पङ्किल भूमि पुनि तिन्ह गयन्द कर थान ।
विन्ध्यविपिन अथवा कतहुँ भूपसदन, नहिं आन ॥

[७६०]

त्यक्तो विन्ध्यगिरिः पिता भगवती माता च रेवोज्झिता।
त्यक्ताः स्नेहनिवद्धबन्धुरधियस्तुल्योदया दन्तिनः ॥
त्वल्लोभान्ननु हस्तिनि प्रतिदिनं बन्धाय दत्तं वपु।
स्त्वं दूरीक्रियसे लुठन्ति च शिरःपीठे कठोराङ्कुशाः ॥

जनक सरिस तजि विन्ध्यगिरि जननी रेवा छोड़ि।
नेही बन्धु सखा सुहृद्र दन्तिन सो मुँह मोड़ि ॥
बन्धन अँगयउँ लोभबस तव करेनु पुनि हन्त।
तुम्हहिं दूर लइ जात मोंहि अंकुस देइं दुरन्त ॥

[७६१]

भोभोः करीन्द्र दिवसानि कियन्ति तावद्।
अस्मिन् मरौ समतिवाहय कुत्रचित्त्वम् ॥
रेवाजलैर्निजकरेणु - कर - प्रयुक्तै।
र्भूयः शमं गमयितासि निदाघदाहम् ॥

किछुक बिताबउ दिवस गज बसि यहि मरुथलबीच।
दाह करेनु मिटाइ पुनि रेवाजल तोहि सींच ॥

---०---

मृग

[७६२]

अग्रे व्याधः करधृतशरः पार्श्वतो जालमाला।
पृष्ठे वह्निर्दहति नितरां संनिधौ सारमेयाः ॥
एणी गर्भादलसगमना बालकै रुद्धपादा।
चिन्ताविष्टा वदति हि मृगं किं करोमि क्व यामि ॥

आगे बधिक लिये धनुस, बगल जाल फैलाइ।
पीछे धधकत आगि, ढिग पहुँचत कूकुर धाइ ॥
गरभभरालसगमन पुनि बालक रूँध्यौ पाँउ।
चिन्तित पूँछत मृगी मृग काह करउँ कहँ जाउँ ॥

[७६३]

वसन्त्यरण्येषु चरन्ति दूर्वां पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि ।
तथापि वध्या हरिणा नराणां को लोकमाराधयितुं समर्थः ॥

दूब चरइं कानन बसइं पिअइं बारि स्वच्छन्द ।
तबउ बधिय मृग, लोक कहँ को आराधि अमन्द ॥

[७६४]

रज्ज्वा दिशः प्रविततः सलिलं विषेण पाशैर्मही हुतवहज्वलिता वनान्ताः ।
व्याधाः पदान्यनुसरन्ति गृहीतचापाः कं देशमाश्रयतु यूथपतिर्मृगाणाम् ॥

चहुँ दिसि फैल्यो पास भुइं, जल मँह बिस, बनदाव ।
बधिक चाप धरि अनुसरइं मृग - जूथप कँह जाव ॥

[७६५]

किमेवमविशंकितः शिशु - कुरंग लोलक्रमं
परिक्रमितुमीहसे विरम नैव शून्यं वनम् ॥
स्थितोऽत्र गजयूथनाथमथनोच्छलच्छोणित
च्छटापटलभासुरोत्कटसटाभरः केसरी ॥

उछल कूद मति पोतमृग करु, वन सून न जान ।
गजसोनितपाटलसटा सिंहवास यहि थान ॥

[७६६]

दूर्वाङ्कुरतृणाहारा धन्यास्ते वै वने मृगाः ।
विभवोन्मत्तचित्तानां न पश्यन्ति मुखानि यत् ॥

दूब चरइं रहि विपिन बिच धन्य हरिन पसुजाति ।
नहिं देखइं मुख विभवमदअन्धन कर केहु भाँति ॥

—०—

कपि

[७६७]

हारं वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कटः ।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नतमाननम् ॥

कोउ अज्ञानी मरकटहिं हार गले महिं दीन्ह ।
पुनि सूँघइ पुनि चाटइ पुनि मुँह ऊपर कीन्ह ॥

—०

उष्ट्र

[७६८]

तुभ्यं दासेर दासीयं बदरी यदि रोचते।
एतावता हि किं द्राक्षा न साक्षादमृतप्रिया ॥

करभ, कँटीली बैर जो तुम्हइ रुचै अति कोइ।
यहि ते दाख कहहु किमु सुधा-मधुर नहिं होइ ॥

—०—

सागर

[७६९]

वातोल्लासितकल्लोल धिक् ते सागर गर्जितम्।
यस्य तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति वापिकाम् ॥

उरमिल बातविकारबस गरजु न रहु मन मारि।
सागर, तुम्हरो तट पथिक प्यासो हेरइ वारि ॥

[८००]

स्वस्त्यस्तु विद्रुमवनाय नमो मणिभ्यः।
कल्याणिनी भवतु मौक्तिकशुक्तिमाला ॥
प्राप्तं मया सकलमेव फलं पयोधे।
यद्दारुणैर्जलचरैर्न विदारितोऽस्मि ॥

विद्रुभवन तव स्वस्ति भो, मनिगन तुम्हहिं प्रनाम।
मुक्तासीपि कुसल रहहु, हम त्यागत तव धाम ॥
फल पयोधिकर पायहूँ, पूरन भो सब काम।
जो दारुन जलचरन्हि सब भिलि नहिं दारेउ चाम ॥

[८०१]

रत्नान्यमूनि मकरालय मावमंस्थाः।
कल्लोलवेल्लितदृषत्परुष - प्रहारैः ॥
किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम।
याच्ञाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोऽपि ॥

मकरालय अपमानु मति रत्नहिं बीचि-पखान।
जाचक कौस्तुभ रतन हित बनि हरि दिय तोहि मान ॥

[८०२]

आदाय बारि परितः सरितां मुखेभ्यः किं तावदर्जितमनेन दुरर्णवेन।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च पातालकुक्षिकुहरे विनिवेशितं च ॥

चहुँ दिसि नदियन बारि गहि दुस्ट उदधि का कीन्ह।
खार कियौ, बाडव हुत्यौ, बिल पताल भरि दीन्ह ॥

—०—

सरोवर

[८०३]

आपेदिरेऽम्बरपथं परितो विहङ्गा भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ते।
संकोचमञ्चति सरस्त्वयि दीनदीनोमीनोनुहन्त कतमांगतिमभ्युपैतु ॥

उडि अम्बर पथ गहहिं खग, मधुप रसाल बिलाइं।
तोहि सूखत सर दीन यहु मीन कहहु कत जाइं ॥

—०—

रत्न

[८०४]

मणिर्लुण्ठतिपादेषु काचः शिरसि धार्यते।
यथैवास्ते तथैवास्तां काचः काचो मणिर्मणिः ॥

चरनन्हि कोउ मनि बाँधई, धारइ सिर पर काँच।
तातें किछु अन्तर नहीं, मनि मनि काँचहु काँच ॥

—०—

शंख

[८०५]

जलनिधौ जननं धवलं वपुर्मुररिपोरपिपाणितले स्थितिः।
इतिसमस्तगुणान्वित शङ्ख भोः कुटिलता हृदये ननिवारिता ॥

जनम जलधि, वपु धवल अति, मुररिपुपानि निवास।
गुन सब उत्तम संख तउ तजि न कुटिलता पास ॥

—०—

कण्टक

[८०६]

सुमुखोऽपि सुवृत्तोऽपि सन्मार्गपतितोऽपि सन् ।
सतां वै पादलग्नोऽपि व्यथयत्येव कण्टकः ॥

सुमुख सुबत्त सुपंथ थित तबउ सुभाउ प्रभाउ ।
कंटक सुजनउ पाद लगि व्यथइ देइ करि घाउ ॥

—०—

विष

[८०७]

अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल तात मास्मदृप्यः ।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयोभुवनेऽस्मिन् वचनानि दुर्जनानाम् ॥

हालाहल नहिं गरब करि बड़ दारुन निज जानि ।
दुरजन बचन असंख्य जग तोहि सम दारुन मानि ॥

[८०८]

नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकूट केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपदिष्टा ।
प्रागर्णवस्यहृदये वृषलक्ष्मणोऽथ कण्ठेऽधुनावससि वाचि पुनः खलानाम् ॥

कालकूट तव बास जग उतरोत्तर बढ़ि आँकि ।
उदधि बीच पुनि संभुगल अब पुनि खलबच झाँकि ॥

—०—

सूर्य

[८०९]

करं प्रसार्य सूर्येण दक्षिणाशावलम्बिना ।
न केवलमनेनात्मा दिवसोऽपि लघूकृतः ॥

दच्छिन आसा पकड़ि रवि जो कर निज फैलाइ ।
अपुनहुँ अपुनो दिवसहूँ लघुकरि दियो दिखाइ ॥

—०—

चन्द्र

[८१०]

अहो नक्षत्रराजस्य साभिमानं विचेष्टितम् ।
परिक्षीणस्य वक्रत्वं सम्पूर्णस्य सुवृत्तता ।।

नखतराज अभिमान बस उलटो करि आचार ।
छीन रहइ तब वक्रता, पूर सुवृत्ताकार ।।

—०—

शिव

[८११]

उरसि फणिपतिः शिखी ललाटे शिरसिविधुः सुखाहिनीजटायाम् ।
प्रियसखि कथयामि किं रहस्यं पुरमथनस्य रहोऽपि संसदेव ।।

उर अहि, सिर बिधु, भाल सिखि, जटामध्य बहि गंग ।
सखि रहस्य का कहउँ सिव - रहस् सभा - हुड़दंग ।।

[८१२]

छेत्सि ब्रह्मशिरो यदि प्रथयसि प्रेतेषु सख्यं यदि ।
क्षीबः क्रीडसि मातृभिर्यदि रतिं धत्सेश्मशाने यदि ।।
सृष्टवा संहरसि प्रजा यदि तथाप्याधाय भक्त्या मनः ।
कं सेवे करवाणि किं त्रिजगती शून्या त्वमेवेश्वरः ।।

काटहु जद्यपि ब्रह्मसिर प्रीति प्रेत सँग चाहु ।
मत्त मातृगन केलि जदि, रतिमसान सों लाहु ।।
रचि नासहु जद्यपि जगत् तदपि भगति मन केरि ।
काहि लगावउँ एक तुम प्रभु देखेउँ जग हेरि ।।

[८१३]

त्वं चेत्संचरसे वृषेण लघुता कानाम दिग्दन्तिनां ।
व्यालैः कंकणभूषणानि कुरुषे हानिर्न हेम्नामपि ।।
मूर्धन्यं कुरुषे जलांशुमग्रशः किं नाम लोकत्रयी ।
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ।।

यान तुम्हारो बृसभ जदि दिग्दन्तिन नहिं छोट।
कंकनपद पन्नगहिं दिय तेहिते कनकन खोट॥
ससि जदि तव सेखर बन्यो अपजस रबिहिंन काउ।
सब समरथ जगदीस प्रभु तुम्हँहिन किछु कहि जाउ॥

—०—

कमल

[८१४]

लक्ष्मीः स्वयं निवसति त्वयि लोकधात्री
मित्रेण चापि विहितोऽस्ति दृढोऽनुरागः।
बन्दीव गायति गुणांस्तव चञ्चरीकः
कः पुण्डरीक तव साम्य मुरीकरोति॥

जगधात्री लछिमी बसइं, मित्रसंग दृढ मान।
भ्रमर गुनहिं तव गुन कमल तुम समको जग आन॥

[८१५]

अयि दलदरविन्द स्यन्दमानं मरन्दं
तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गाः।
दिशि दिशि निरपेक्षस्तावकीनं विवृण्वन्
परिमलमयमन्यो बान्धवो गन्धवाहः॥

छकि मरंद नवकंज तव मंजु गुंजरहिं भौंर।
गन्ध बिखेरि, न चाह किछ, बन्धु पवन तत्र और॥

—:०:—

कलम

[८१६]

अस्मानवेहिकलमानलमाहतानां येषां प्रचण्डमुसलैखदाततैव।
स्नेहं विमुच्य सहसा खलतां प्रयान्ति ये स्वल्पपीडनवशान्नवयं तिलास्ते॥

सालिधानं हौं सहि मुसल उज्जर मधुर जो होइं।
तिल न होउं जो नेह किछू दइ पुनि कदु खल होइं॥

सुवर्ण

[८१७]

अग्निदाहे न मे दुःखं छेदे न निकषे नवा।
यत्तदेव महद्दुःखं गुञ्जया सह तोलनम् ॥

अगिनिदाह को, छेदको, घरसन को दुख नाय।
गुंजा सँग जो तोलिबो सो दुख सहो न जाय ॥

[८१८]

अदयं घर्ष शिलायां दह वा दाहेन भिन्दि लौहेन।
हे हेमकार कनकं मा मां गुञ्जाफलैस्तुलय ॥

निरदय घरसहु, छेदु सब अगिनि जलावहु अंग।
हेमकार मोहि कनक कंह तोलु न गुंजा संग ॥

:०:—

कस्तूरिका

[८१९]

अयि त्यक्तासि कस्तूरि पामरैः पङ्कशङ्कया।
अलं खेदेन भूपालाः किं न सन्ति महीतले ॥

जानि पंक पामर तुम्हहिं जो त्यागहिं कस्तूरि।
खेद न करु भूपति अबहुँ जगतीतल हइं भूरि ॥

[८२०]

जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णः।
दूरे पुंसां वपुषि रचना पङ्कशङ्कां करोति ॥
यद्यप्येवं सकलसुरभिद्रव्य - गर्वापहारी।
को जानीते परिमलगुणः कोपि कस्तूरिकायाः ॥

जनम सों, बरन सों जानि परि जदपि न किछुक विसेखि।
जगदुत्तम परिमल तदपि नहिं मृगमदसम देखि ॥

—:०:—

कूप

[८२१]

हे कूप त्वं चिरंजीव स्वल्पतोये बहुव्ययः।
गुणवद्रिक्त-पात्राणि प्राप्नुवन्ति हि पूर्णताम् ॥

चिरजीवहु हे कूप तुम थोरेउ जल बहुदान।
गुनवद रीते पात्र लहि पूरन करु दइ मान ॥

[८२२]

सगुणैः सेवितोपान्तो विनतैः प्राप्तदर्शनः।
नीचोऽपि कूप सत्पात्रैर्जीवितार्थं समाश्रितः ॥

सगुन तोहि सेवइं, विनत जन तव दरसन पाउ।
नीच कूप सत्पात्र तउ जीवन हित तोहि आउ ॥

—o—

तुला

[८२३]

गुरुषु मिलितेषु शिरसा प्रणमसि लघुषून्नता समेषु समा।
उचितज्ञासि तुले किं तुलयसि गुञ्जाफलैः कनकम् ॥

गुरुहिं नवउ, सम संग सम, लघु पुनि देउ उठाइ।
गुंजा सँग तोलिब कनक किन्तु न तुला सुहाइ ॥

—o—

दुग्ध

[८२४]

को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण।
तप्तं विकृतं मथितं तथापि यत्स्नेह मुद्गिरति ॥

सहज मधुर सुचि दूध संग धरिय तुला नहिं औरि।
तप्त विकृत पुनि मथित जो उगिलइ नेह बहोरि ॥

—o—

चन्दन

[८२५]

यद्यपि चन्दनविटपी फलपुष्पविवर्जितः कृतो विधिना।
निजवपुषैव तथापि स हरति सन्तापमपरेषाम्॥

फूल न फलहु न दीन्ह विधि चन्दनकँह किछु आप।
तबउ स्वदेहइ अरपि तरु हरइ जगत् सन्ताप॥

—०—

चम्पक

[८२६]

यद्यपि खदिराण्ये गुप्तो वस्ते हि चम्पकोवृक्षः।
तदपि च परिमलतुमुलं दिशिदिशि कथयेत् समीरणस्तस्य॥

खदिर विपिन छिपि बसि जदपि चम्पक पादपसार।
तदपि समीर उड़ाइ तेहि परिमल करइ प्रचार॥

—०—

कर्पास

[८२७]

नीरसान्यपि रोचन्ते कार्पासस्य फलानि मे।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये॥

नीरस जदपि कपास फल, तउ आदर बुध देत।
गुनमय जेहि कर जनम जग गुह्य छिपावन हेत॥

—०—

वंश

[८२८]

छिन्नः सनिशितैः शस्त्रैर्विद्धश्च नवसप्तधा।
तथापि हि सुवंशेन विरसंनापजल्पितम्॥

निसित सस्त्रसों काटि पुनि सोडस छेद कराइ।
तबहुँ सुबंस न बिरस किछु बोलेउ कहुँ अनरवाइ॥

—०—

हार

[८२९]

गुणवतस्तवहार न युज्यते परकलत्रकुचेषु विलुण्ठनम् ।
स्पृशति शीतकरो जघनस्थली मुचितमस्ति तदेव कलङ्किनः ॥

गुनमय हार न सोहि तव परकलत्र कुच संग ।
चन्द जो छुइ परतिय जघन ताहि कलंकिहि रंग ॥

—०—

कर्णधार

[८३०]

जीर्णा तरिः सरिदियं च गभीरनीरा नक्राकुला वहति वायुरतिप्रचण्डः ।
तार्याः स्त्रियश्च शिशवश्च तथैव वृद्धास्तत्कर्णधारभुजयोर्बलमाश्रयामः ॥

जीरन तरि गहरी नदी, झंझानक्र प्रहार ।
तिय-सिसु-वृद्ध उतारनो करनधार आधार ॥

—०

दम्भ

[८३१]

वाताहारतया जगद् विषधरैराश्वास्य निःशेषितं
ते ग्रस्ताः पुनरभ्रतोयकणिकातीव्रव्रतै बर्हिभिः ।
तेऽपि क्रूरचमूरुचर्मवसनैर्नीता क्षयं लुब्धकै
र्दम्भस्य स्फुरितं विदन्नपिजनोजाल्मो गुणांनीहते ॥

बिसधर बाताहार करि ठगि जग कीन्ह बिनास ।
बर्हीं बारिदजल ब्रती करि बिसधरकुल नास ॥
बधिक ओढ़ि मृगचरम तिन हत्यो मयूरन कूर ।
आदि अन्त दुहुँ दुखद तउ दम्भ करइ जग पूर ॥

रससूक्ति खण्ड

भगवान् मन्मथ

[८३२]

अनङ्गेनाबलासङ्गाज्जिता येन जगत्त्रयी ।
स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोऽस्तु नः ॥

होइ अनंग, अबलान सँग, जीति चराचर जोउ ।
काम विचित्रचरित्र सोइ सकल कामप्रद होउ ॥

[८३३]

एकं वस्तु द्विधा कर्तुं बहवः सन्ति धन्विनः ।
धन्वी स मार एवैकौ द्वयोरैक्यं करोति यः ॥

एक बस्तु कँह दुइ करइं बहु धन्वी जग माँहि ।
जो दुइ कँह पुनि एक करि सो मन्मथ तजि नाँहि ॥

[८३४]

जयति मनसिजः सुखैकहेतुर्मिथुनकुलस्य वियोगिनां कठोरः ।
वपुषि यदिषुपातवारणार्थं वहति वधूं शशिखण्डमण्डनोऽपि ॥

सुख संयोगिहिं विरहिं दुख देइ मदन अविनीत ।
आधी अंग पतिनी बन्यौ, ससिसेखर जेहि भीत ॥

[८३५]

वक्षःस्थलीवदनवामशरीरभागैः पुष्णन्ति यस्य विभुतां पुरुषास्त्रयोऽपि ।
सोयं जगत्त्रितयजित्वरचापधारी मारः परान् प्रहरतीति न विस्मयाय ॥

मुख उर बाम सरीर सों ब्रह्म बिस्नु ईसान ।
धारइं प्रभुता जासु सोइ मार कि छाँड़इ आन ॥

[८३६]

स्तोकास्त्रसाधनवता भवता मनोज स्वैरं जगज्जितमनङ्गतयापि सर्वम् ।
स्याच्चेद् भवान् बहुशरः प्रतिलब्धगात्रः कुर्यास्ततो यदपिकर्मकियन्नजाने ॥

मनसिज रहेउ अनंग तउ पाँचहिं सर जगजीत ।
होतेउ सांग अनेकसर काह न करतेउ मीत ॥

[८३७]

हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि प्रालेयसीकरमुचस्तुहिनांशुभासः ।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ॥

हार, इन्दुकर नलिनदल, बसनगील, मलयाहु ।
जेहि धधकावहिं बुझै सो किमि मदनागि भयाहु ॥

[८३८]

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य ।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥

ललना - क्रीडा - गुरु, शशी - मीत, विजेता ईस ।
सुरत - नाटिका - सूत्रधर, जयति अनंग रतीस ॥

[८३९]

हृदयतृणकुटीरेदीप्यमाने स्मराग्नावुचितमनुचितं वावेत्ति कः पण्डितोऽपि ।
किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यस्त्रिदशपतिरहल्यांतापसीं यत्सिषेवे ॥

हिय धधकेउ कामागिन तब बुधहुँ सूझाइन काउ ।
सुनासीर अप्सरहिं तजि गोतम पतिनिहिं धाउ ॥

[८४०]

न गम्यो मन्त्रणां नच भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ।
भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद् भङ्गमसमं
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशंघूर्णयति च ॥

मन्त्र भिसज बहु सान्ति विधि केहु नहिं प्रसमनजोग ।
अपस्मार मदनोत्थ यह भरमि नचावइ रोग ॥

स्त्रीप्रशंसा

[८४१]

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः॥

आँखिन जरचौ मनोज जिन्ह आँखिन देइं जिआइ।
बन्दउँ तिन्हइँ सुलोचनन्हिँ जिन्हँ त्र्यम्बकहिं हराइ॥

[८४२]

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।
मासि मासि रजो यासां दुष्कृतान्यपकर्षति॥

नारि अपावन कबहुँ नहि, इन्हहिं न दोस न पाप।
रजोधरम प्रतिमास जिन्हँ दुस्कृत मेटइ आप॥

[८४३]

प्राणानां च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः।
प्रिया कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः॥

प्रानन प्रिया समान कहि भूले पामर लोग।
पिया कंठलगि देइ रति प्रान मरन कर जोग॥

[८४४]

यासामञ्चलवातेन दीपो निर्वाणतां गतः।
तासामालिङ्गने पुंसां नरके पतनं कुतः॥

जेहि कर आँचलबात सों दीप पाइ निरवान।
तेहि कर आलिंगन किये किमि नर नरक पयान॥

[८४५]

आस्यं सहास्यं नयनं सलास्यंसिन्दूरबिन्दूदयशोभिभालम्।
नवा च वेणी हरिणीदृशश्चेदन्यैरगण्यैरपि भूषणैः किम्॥

मुख सस्मित नर्तित नयन मस्तक सिन्दुर बिन्द।
अभिनव बेनी मृगदृसिंहि भूसन सहज अनिन्द॥

[८४६]

अविश्वसन् धूर्तधुरन्धरोऽपि नरः पुरन्ध्रीपुरतोऽन्ध एव।
अशेषशिक्षाकुशलोऽपि काकः प्रतार्यते किं न पिकाङ्गनाभिः॥

अविस्वासधन धूतहू स्त्रीसम्मुख दृगहीन।
सावधान अति काक तेहि छलइ कोकिला दीन।।

[८४७]

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः।।

लज्जा, स्मित, भय, भावकरि, विमुख, कटाक्ष निहारि।
ईर्ष्या, लीला-कलह सों सब विधि बन्धन नारि।।

[८४८]

उडुराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजविराजितमन्दगतिः।
यदि सा वनिता हृदये निहिता क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः।।

इन्दुमुखी केहरिकटी मृगनयनी गजचाल।
चित्तबसी जदि सुन्दरी तप समाधि जप जाल।।

[८४९]

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैर्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम्।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा।।

सेवइ दुइ मँह एक नर यहि जीवन कर सार।
पीनस्तन तरुनी सुभग अथवा गिरिकान्तार।।

[८५०]

तनुस्पर्शादस्याः दरमुकुलिते हन्त नयने
ह्युदञ्चद्रोमाञ्चं व्रजति जडतामङ्गमखिलम्।
कपोलौ धर्मार्द्रौ ध्रुवमुपरताशेषविषयं
मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति निबिडं ब्रह्मपरमम्।।

छुइ सुन्दरिअँग दृग मुँदेउ जड रोमांच अमन्द।
स्वेद वेपथू डूबि मन सान्द्र ब्रह्म आनन्द।।

वयःसन्धि

[८५१]

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।।

चित्र उभरि लहि तूलिकहिं, रवि किरनहिं जिमि पद्म।
नव जोवन लहि उभरि वपु भइ तिमि सोभासद्म।।

[८५२]

यथा यथाऽस्याः कुचयोः समुन्नतिस्तथातथा लोचनमेति वक्रताम् ।
अहो सहन्ते बत नो परोदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ।।

जस उन्नत कुच उठहिं तस दृगन्हि बाँकपन गाढ़ि ।
सहज कलुस नहिं सहि सकइ कबहुँ पराई बाढ़ि ।।

—:०:—

तारुण्य

[८५३]

स्तनाभोगे पतन्भाति कपोलात् कुटिलोऽलकः ।
शशाङ्कबिम्बतो मेरौ लम्बमान इवोरगः ।।

पड़ि कपोल तें कुचसिखर कुटिल केस इमि लाग ।
चन्द्रबिम्बतें मेरु जनु लटकेउ कालो नाग ।।

[८५४]

एणीदृशो विजयते वेणी पृष्ठावलम्बिनी ।
कशेव पञ्चबाणस्य युवतर्जनहेतवे ।।

मृगनयनीबेनी लसइ लटकि पीठ इहि भाँति ।
जुवतरजन कँह मदन मनु कसा लटकि लगि पाँति ।।

[८५५]

वेणी श्यामा भुजङ्गीयं नितम्बान्मस्तकंगता ।
वक्त्रचन्द्रसुधां लेढुं सान्द्रसिन्दूरजिह्वया ।।

बेनी काली नागिनी उठि नितम्ब सिर दीह ।
बदनचन्द अमरित पियन सिन्दुर रेखा जीह ।।

नेत्र

[८५६]

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ।।

सुभ्रूआज्ञाकर मदन नित करि तेहि ढिग वास ।
होइ नयन-संकेत जँह तहँ डालइ निज पास ।।

[८५७]

इषुत्रयेणैव जगत्त्रयस्य विनिर्जयात् पुष्पमयाशुगेन।
शेषा द्विवाणी सफलीकृतेयं प्रियादृगम्भोजपदेऽभिषिच्य ॥

तीनहिं सर त्रिभुवन जितेउ बीर न स्मर सम कोपि।
सेस बान दुइ सफल किय प्रियानयनपदरोपि ॥

[८५८]

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति ॥

सन्मारग, इन्द्रियविजय, लज्जा, विनय महान।
लागि न जुवतिकटाच्छसर जबतक, तबतक जान ॥

—:०:—

दन्त

[८५९]

द्विधा विधाय शीतांशुं कपोलौकृतवान् विधिः।
तन्व्यास्तद्रसनिष्यन्दबिन्दवो रदनावलिः ॥

ससिमंडल दुइ भाग करि दुहुँ कपोल बिधि कीन्ह।
तेहि निकस्यौ रसबूँद सो दन्तावलि पद लीन्ह ॥

—:०:—

मुख

[८६०]

जितेन्दुपद्मलावण्यं कः कान्तावदनं जयेत्।
मुक्त्वा तदेव सुरतश्रमजिह्मितलोचनम् ॥

इन्दुकमल कँह जीत जो को कान्तामुख जीत।
सुरतथक्यौ बाँकेनयन सोइ केवल तेहि जीत ॥

—:०:—

स्तन

[८६१]

मृद्वङ्गि कठिनौ तन्वि पीनौ सुमुखि दुर्मखौ ।
अत एव बहिर्यातौ हृदयात्ते पयोधरौ ॥

कोमलांगि तुम कुच कठिन, तन्वी तुम ये पीन ।
सुमुखी तुम, इन मुख कलुख, तेहि हिय बाहर कीन ॥

[८६२]

यन्न माति तदङ्गेषु लावण्यमतिसंभृतम् ।
पिण्डीकृतमुरोदेशे तत्पयोधरतां गतौ ॥

सुन्दरि अति लावन्य जो बढ़ि अंगनि न समाइ ।
वच्छस्थल दुइ पिंड. सो बनि कुच सोभा पाइ ॥

[८६३]

स्वकीयं हृदयं भित्त्वा निर्गतौ यौ पयोधरो ।
हृदयस्यान्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः ॥

कढ़चौ भेदि निज हियहिं जो ये कुच निर्दय पीन ।
भेदन मँह परहिय दया तिन्हहि कतहुँ किमि कौन ॥

—:०:—

समग्रस्त्रीरूप

[८६४]

फलायते कुचद्वन्द्वमियं हेमलतायते ।
अङ्गानि कुसुमायन्ते मनो मे भ्रमरायते ॥

हेमलता बनि सुन्दरी, फल कुचद्वन्द्व सुहाइ ।
अंग कुसुम सब खिलि रहे, मन मधुकर मँडराइ ॥

[८६५]

आलपति पिकवधूखि पश्यति हरिणीव चलति हंसीव ।
स्फुरति तडिल्लतिकेव स्वदते तुहिनांशुलेखेव ॥

बोलइ, चितवइ, चलइ, अरु चमकइ अधिक सुहाइ ।
पिकी, मृगी, हँसी, जुवति बिजुरि जुन्हाई ताँइ ॥

[८६६]

सन्यस्तभूषापि नवैव नित्यं विनापि हारं हसतीव कान्त्या।
मदं विनापि स्खलतीव भावैर्वाचं विना व्याहरतीव दृष्टा ॥

भूसन बिनु नूतन दिखै आभइ हँसि बिनु हार।
भाव मत्त डग बिनहिं मद, चपउ करइ ब्याहार ॥

[८६७]

सौरभ्यं मृगलाञ्छने यदि भवेदिन्दीवरे वक्रता
माधुर्यं यदि विद्रुमे तरलता कन्दर्पचापे यदि।
रम्भायां यदि विप्रतीपगमनं प्राप्तोपमानं तदा
तद्वक्त्रं तदुदीक्षणं तदधरस्तद्भ्रूस्तदूरूयुगम् ॥

जदि ससि सौरभ, बक्रता जदि कुवलयदल पाइ
विद्रुम मधुराई जदि, मदनचाप तरलाइ।
उलटो कदलीस्तम्भ जदि, तब उपमान बनाइ
सुन्दरि मुख, चितवन, अधर, भ्रुयुग ऊरु सुहाइ ॥

[८६८]

न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये।
सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥

सम्मुख होइ जब कहइ पिय मधुर मन्द मुसुकान।
सकल अंग इक संग मिलि आँख होइँ वा कान ॥

[८६९]

सेयं सीधुमयी वा सुधामयी वा हालाहलमयी वा।
दृग्भ्यां निपीतमात्रा मदयति मोदयति मूर्च्छयति च ॥

मदिरा, अमरित, बिसमयी सुन्दरि सुसमाकोस।
नयनन्हि पान किये मदइ मोदइ मूर्छइ होस ॥

[८७०]

अर्धस्मितेन विनिमन्त्र्य दशार्धबाणमर्धं विधूय वसनाञ्चलमर्धमार्गे।
अर्धेन नेत्रविशिखेन निवृत्यसार्धमर्धार्धमेव तरुणं तरुणी चकार ॥

नेवति काम मुसुकाइ किछु किछु आँचल खिसकाहि।
नयनन बान चलाइ किछु तरुनी तरुनहिं ढाहि ॥

—:०:—

वियोगिप्रलाप

[८७१]

नपुंसकमिति ज्ञात्वा तां प्रति प्रहितं मनः।
तत्तुतत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम्॥
मनहिं नपुंसक जानि महुँ तेहि ढिग भेजेउ दूत।
सो तेहि सँग तँह रमिरह्यौ, ठगि मोहिं पाणिनि धूत॥

[८७२]

दत्त्वा कटाक्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम।
मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः॥
मृगनयनी दइ नयनसर बस कोन्ह्यो मन मोर।
महुँ पामर दइ हृदय निज लियों मदनजर घोर॥

[८७३]

अपूर्वो दृश्यते वह्निः कामिन्याः स्तनमण्डले।
दूरतो दहते गात्रं हृदि लग्न स्तुशीतलः॥
अद्भुत आगि जलइ कबहुँ कामिनिकुच नहिं रीत।
अंग जलावइ दूर तें हिय लिपगी लगि सीत॥

[८७४]

प्रासादे सा दिशिदिशि च सा पृष्ठतःसा पुरःसा।
पर्यङ्के सा पथिपथिचसा तद्वियोगातुरस्य।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सासा
सासा सासा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः॥
भवनमध्य सोइ, दिसन्ह सोइ, आगे पीछे सोइ।
पलँग बीच मग-मग सोईं मोहि विरहो कहँ होइ।
चित्त मोंहि किछु सूझि नहिं सोइ मोंहि किछु नहिं आन।
सोइ सोइ सब कहुँ दिखइ किमि यहि अद्वैत निसान॥

—:०:—

वियोगिनीप्रलाप

[८७५]

याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः।
अस्माकं तु गते कान्ते गता निद्रापि वैरिणी॥

जो देखहिं पिय सपन मँह धन्य सखी तेहि मानि।
पिय परदेसी होत मोरि बैरी नींद हेरानि।।

सुरतप्रशंसा

[८७६]

संदष्टाधरपल्लवा सचकितंहस्ताग्रमाधुन्वती
मा मा, मुञ्च शठेति कोपवचनै रार्नर्तितभ्रूलता।
सीत्काराञ्चितलोचना सरभसं यैश्चुम्बिता मानिनी
प्राप्तंतैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः।।

दँसेउ अधर पिय चकित तिय कोमल अंगुलि हिलाय।
नहिं नहिं निरमम छोड़ सठ झिरकत भौंह नचाय।
सीतकार मुकुलितनयन्हि चूमि जो पिय भुज गन्थि।
पायेउ सोइ अमरित, मुधा देवन्ह सागर मन्थि।।

नववधू

[८७७]

असंमुखालोकनमाभिमुख्यं निषेध एवानुमतिप्रकारः।
प्रत्युत्तरं मुद्रणमेव वाचो नवाङ्गनानां नव एव पन्थाः।।

संमुख न देखब अभिमुखी नाही हाँ कर रूप।
मौन रूप उत्तर बचन रीति नवोढ अनूप।।

सतीवर्णन

[८७८]

कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा।
विपत्तौ बुद्धिदात्री च सा भार्या सर्वदुर्लभा।।

दासी जो घर काज मँह, रतिमँह बेस्या होइ।
भोजन जननी, बिपति मति, दुरलभ भार्जा सोइ।।

[८७९]

नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

जज्ञि न नारी को पृथक् नहि व्रत नहिं उपवास।
पतिहिं पूजि पूजा लहहिं सादर सुरपुर बास।।

[८८०]

तल्पे प्रभुखि गुरुखि मनसिजशास्त्रे श्रमे भुजिष्येव।
गेहे श्रीखि गुरुजनपुरतो मूर्तेव सा व्रीडा॥

कामसास्त्रगुरु पलँगप्रभु, स्रमदासी, गृहकान्ति।
लज्जामूरति गुरुनढिग, भार्जा सब सुख सान्ति॥

[८८१]

भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु करुणा श्वश्रूषु नम्रं शिरः
प्रीति र्यातृषु गौरवं गुरुजने शान्तिः कृतागस्यपि।
अम्लानः कुलयोषितां व्रतविधिः सोऽयविधेयः पुन
र्मद्भर्तुर्दयिता इति प्रियसखीबुद्धिः सपत्नीष्वपि॥

करुना आस्रित, भगति पति, सोस नवइ ढिग सासु।
नेह बन्धुतिय, मान गुरु, छिमा खोटि होइ जासु।
कुलललना आचरन यहि कबहुँन खंडित कोन।
मम पतिदयिता जानि हिय सौतिहुँ प्रति न मलीन॥

[८८२]

संचारो रतिमन्दिरावधि सखीकर्णावधि व्याहृतं
चेतः कान्तसमीहितावधि महामानोऽपि मौनावधिः।
हास्यं चाधरपल्लवावधि पदन्यासावधि प्रेक्षितं
सर्वं सावधि नावधिः कुलभुवां प्रेम्णः परं केवलम्॥

पदगति चलि रतिभवन तक, सखिस्रवनन तक बोल।
चितसीमा पियचाह तक, मान मौन तक तोल।
हास अधरपल्लवहिं तक, चितउब पदनति नेम।
सब सावधि कुलजोषितहिं निरवधि केवल पेम।

—o—

असतीवर्णन

[८८३]

दुर्दिवसे घनतिमिरे दुःसंचारासु नगरवीथीषु।
पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघनचपलायाः॥

दुरदिन जब, घनतिमिर जब, नगरगली जब सून।
पति परदेस गमन जब, सुख कुलटहिं बढ़ि दून॥

[८८४]

पाणौगृहीतापि पुरस्कृतापि स्नेहेन नित्यं परिवर्धितापि ।
परोपकाराय भवेदवश्यं वृद्धस्य भार्या करदीपिकेव ॥

पानि गह्यौ, आगे कर्यौ, नित दइ नेह बढ़ाइ ।
बूढ़जुवति, करदीपिका परउपकारहिं आइ ॥

[८८५]

प्रियो ममैवावचितैः प्रसूनैं हृष्टो हरस्यातनुते सपर्याम् ।
अतो नतानेकलतावृतानि यास्यामि सायं विपिनानि सख्यः ॥

हौं जो लावौं सुमन तेहि पिय प्रसन्न सिव पूजि ।
तेहिते साँझ विपिन सखी जाउँ लता झँपि दूजि ॥

[८८६]

पतिरतीवधनी सुभगोयुवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः ।
शिशुरलंकुरुतेभवनं सदा तदपि सा सुदती रुदती कुतः ॥

जुवा सुभग पति अतिधनी नहिं परतिय सँग कोइ ।
सिसुदीपक घर सोहई तउ सुदती कस रोइ ॥

[८८७]

स्वामी निःश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालिहो यातरः ।
तद्दूरादयमञ्जलिः किमधुना दृग्भङ्गिभावेन ते
वैदग्धीमधुर प्रपञ्चचतुर व्यर्थोऽयमत्र श्रमः ॥

लखि उसाँस पति डाहकरि, सवति सूँघि मनलेत ।
नैन जेठानी गहि रही, सासु प्रेत संकेत ।
चतुर मधुर पिय दूरतें अँजलि जोड़ि जताउँ
नैन-सैन मति करहु इहि स्रम सब मोघ बताउँ ॥

[८८८]

सव्रीडार्धनिरीक्षणं यदुभयोर्यद्दूतिसंप्रेषणं
ह्यद्यश्वोभविता समागम इति प्रीतिप्रसादश्चयः ।
प्राप्ते कालसमागमे सरभसं यच्चुम्बनालिङ्गनं
तत्कामस्य फलं तदेव सुरतं शेषा पशूनां स्थितिः ॥

लखइं लजाइं कटाच्छ तें, दूती आवइ जाइ।
मिलनो होइहि आजकल प्रीति प्रसाद बनाइ।
भरि उमंग पुनि मिलन छिन जो चुम्बन लिपटाव।
सोइ सनेहफल सुरत सोइ, सेस पसुन मिलगाव॥

[८८६]

इन्दुर्यत्र न निन्द्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते
नोच्छवासा हृदयं दहन्त्यशिशिरा नोपैति कार्श्यं वपुः।
स्वाधीनामनुकूलिकीं स्वगृहिणीमालिङ्ग्य यत् सुप्यते
तत् किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते॥

नाहिँ उलहनो इन्दु कँह सुनिय न दूतीबात।
तपत आह नहिं हिय दह्यो नहिं दूबर भइ गात।
जहँ स्वाधीना लहि पिया लिपटि सोइ सुखसार।
नहिं यहि प्रेमकथा कहिय, गृह-आस्रम-आचार॥

[८९०]

कार्ये सत्यपि जातु याति न बहिर्नाप्यन्यमालोकते।
साध्वीरप्यनुकुर्वती गुरुजनं श्वश्रूं च शुश्रूषते।
विस्रम्भं कुरुते च पत्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुन
र्निद्राणे सकले जने शशिमुखी निर्याति रन्तुं विटैः॥

काज पड़ेउ नहिं जाइ कहुँ नहिं चितवइ नर आन।
सती अनुसरइ, सास गुरु सेवइ करि सम्मान।
प्रनय याचना पूरिकरि पियकर अधिक उमंग।
सोवत तजि घर किन्तु निसि जाइ रमइ विट संग॥

[८९१]

आकारेण शशी गिरा परभृतः परावतश्चुम्बने
हंसश्चक्रमणे समं दयितया रत्यां प्रमत्तो गजः।
इत्थं भर्तरि मे समस्तयुवतिश्लाघ्यैर्गुणैः सेविते
क्षण्णं नास्ति विवाहितः पतिरितिस्यान्नैषदोषोयदि॥

रूप ससी, पिक बोलनो, परावत जिमि चूमि।
हंस गँवन, रति पिया सँग मदगयंद जिमिझूमि ।।
जुवति प्रसंसित सकल गुन ममपिय माँहि लखाइं।
होत न थोरो दोस जदि नाहिं विवाहित साइं ।।

[८६२]

कार्येणापि विलम्बनं परगृहे श्वश्रूर्न सम्मन्यते
शङ्कामारचयन्ति यूनि भवनं प्राप्ते मिथो यातरः।
वीथीनिर्गमनेऽपि तर्जयति च क्रुद्धा ननान्दा पुनः
कष्टं हन्त मृगीदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम् ।।

काजहुँते कहुँ आन घर बिलमि त सासु रिसानि।
तरुन आइ जदि घर कोउ संका करइं जेठानि।।
बीथी जदि धोखेहु निकसि नन्द चढ़ावइ भौंह।
पतिघर मृगनयनीन्ह हित बन्दीघर कर सौंह ।।

दुष्टस्त्रीस्वभाववर्णन

[८६३]

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणाँ दोषाः स्वभावजाः ।।

माया, साहस, मूढता, झूठ, लोभ, अपवित्र।
निरदयता, बुधजन गन्यौ नारी सहज चरित्र ।।

[८६४]

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रेणैवोपदिश्यते ।।

तियजन होइं चतुर कुसल पंडित सहज सुभाउ।
पुरुसन कहँ पुनि चतुरई सास्त्र पढ़े पर आउ ।।

[८६५]

दर्शनाद् हरते चित्तं स्पर्शनाद् ग्रसते बलम्।
संगमाद् ग्रसते वीर्यं नारी प्रत्यक्षराक्षसी ।।

दरसन होते चित हरइ परस किये बल खोइ।
बीर्ज हरइ संगम किये नारि पिसाची होइ ।।

[८९६]

स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥

थान नहीं अवसर नहीं नहिं कोउ चाहनहार ।
तेहि ते नारी सती रहि बुध जन करयौ विचार ॥

[८९७]

नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितः ।
विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुज्यते ॥

नहिं कोउ तियहिं अभोग्य नर नहिं कोउ बूढ़ जनाइ ।
नाहिं सुरूप कुरूप, बस भोगि जो पुरुस कहाइ ॥

[८९८]

शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि ।
बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योषितो विदुः ॥

माया सम्बर असुर कहिं बलि कहिं नमुचिहुँ केरि ।
माया कुम्भीनसिहुँ कहिं तिय जानइ चहुँ फेरि ॥

[८९९]

उशना वेद यच्छास्त्रं यच्चवेद बृहस्पतिः ।
स्त्रीबुद्ध्या न विशेष्येत तस्माद् रक्ष्याः कथंहिताः ॥

उसना जानइ सास्त्र जो जानि बृहस्पति जाहि ।
तियबुधितेहुँते कहुँ अधिक कौन राखि सकि ताहि ॥

[९००]

भोजनाच्छादने दद्याद् ऋतुकाले च संगमम् ।
भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत् सुधीः ॥

असन-बसन देइय बिपुल, संगम किय रितु काल ।
आभूसन देइय तियहिं, नहिं मन्त्रिय केहुँकाल ॥

[९०१]

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्र प्रशासिता ।
राजन्निर्मूलतां याति तद् गृहं भार्गवोऽब्रवीत् ॥

जहँ अबला, जहँ धूत, जहँ बालक प्रभुताधारि ।
होइ सो घर निरमूल नृप उसना कह्यौ बिचारि ॥

[६०२]

तावत् स्यात् सुप्रसन्नास्यस्तावद् गुरुजनेरतः ।
पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति रहो वचः ।।

मुख प्रसन्न नर तबहि तक तब तक गुरुजन प्रीति ।
जब तक सुनि न रहसि कतहुँ तियभासा बहुरीति ।।

[६०३]

न स्त्रीणामप्रियः कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते ।
गावस्तृण मिवारण्ये प्रार्थयन्ति नयं नवम् ।।

तियहि न अप्रिय कोउ पुरुस प्रियहुँ न पुनि कोउ आहि ।
बन बिच जिमि गौ तृन चरइ तिमि नव नव नर चाहि ।।

[६०४]

अलाभात् पुरुषाणां हि भयात् परिजनस्य च ।
वध-बन्ध-भयाच्चैव तथा गुप्ताहि योषितः ।।

लहइ न निज इच्छित पुरुस मन परिजनभय आन ।
बधबन्धनहूँ डर जुवति तेहिते रच्छित जान ।।

[६०५]

यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्वभोगभूः ।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत् त्यक्तं जगत् त्यक्त्वा सुखी भवेत् ।।

जेहि के तिय तेहि भोगि मन, तिय नहिं भोगहुनाँहि ।
तिय छोड़ी जग छूटिगो जगछूटे दुख जाँहि ।।

[६०६]

नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
रमयति सुरतेनान्यं स्त्रीबहुरूपा निजा कस्य ।।

चितवइ केहु, बतियाइ केहु, क्रीडा केहु सँग गोइ ।
देइ सुरत सुख अन्य केहु तिय केहिकर निज होइ ।।

[६०७]

समुद्रबीचीवचलस्वभावाः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः ।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति ।।

जलधिबीचिसम चलचरित साँझमेघ छन रागि ।
तिय धन दुहि तजि अधन नर जिमि जावक पद लागि ।।

[९०८]

स्त्रियो हि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्यपुंसः।
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः॥

निधनहेतु तिय पुरुस कँह बिपतिहेतु सोइ जान।
नरकहेतु प्रमदाहिं पुनि कलहउ मूल बखान॥

[९०९]

नातिप्रसंगः प्रमदासु कार्यो नेच्छेद् बलं स्त्रीषु विवर्धमानम्।
अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः क्रीडन्ति काकैखिलूनपक्षैः॥

अति प्रसक्ति प्रमदान सँग करय न बनि मतिहीन।
तिय अतिकामिहिं क्रीड जिमि काक पंख बिनु दीन॥

[९१०]

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां किं नाम वामनयना न समाचरन्ति॥

मोहइं मदइं बिरावइँ, डाटइं रमइं सताइं।
सूध पुरुस मन प्रबिसि ये अबला किमि न नचाइं॥

[९११]

अनङ्कुरितकूर्चकः स तु सितोपलाढ्यं पयः
स एव धृतकूर्चकः सलवणाम्बुतक्रोपमः।
स एव सितकूर्चकः क्वथितगुग्गुलोद्वेगकृद्
भवन्ति हरिणीदृशां प्रियतमेषु भावास्त्रयः॥

बिना रेख नर मधुर पय, मुच्छि लवन युत तक्र।
सितकेसी गुग्गुल कढ़ा, तियाभाव त्रिक वक्र॥

[९१२]

कार्कश्यं स्तनयो र्दृशोस्तरलतालीकं मुखे दृश्यते
कौटिल्यं कचसंचये प्रवचने मान्द्यं त्रिके स्थूलता।
भीरुत्वं हृदये सदैव कथितं मायाप्रयोगः प्रिये
यासां दोषगणो गुणा मृगदृशां ताः किं नराणां प्रियाः॥

कुच करकस, दृग् तरल अति, मुख अलीक, बच मन्द।
केस कुटिल, हिय भीरु पुनि स्थूल नितम्ब अमन्द।
पिय सन माया, दोस इमि जेहि गुन बनइं अनूप।
सो मृगनयनी कबहुँ किमि होइ नरहिं पियरूप॥

[९१३]

भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो विद्वान् कुलीनो युवा
दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभवः शृङ्गारदीक्षागुरुः ।
स्वप्राणाधिककल्पिता स्ववनिता स्नेहेन संलालिता
तं कान्तं प्रविहाय सैवयुवति जरिं पतिं वाञ्छति ।।

नीतिसास्त्र मँह विज्ञपति जुवा कुलीन बदान ।
बिपुलधनो, सिंगारगुरु, राखइ प्रानसमान ।
ऐसेउ नेहप्रवीन पति तजि सोइ जुवती नित्त ।
सेवइ कुलटा जार पति तेहि मानइ निज मित्त ।।

[९१४]

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नखरवृषभैः सर्वमायाकरण्डं
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतमयं धर्मनाशाय सृष्टम् ।।

अबिनयगृह, साहसभवन, संसयकर भँवरेह ।
दोसरासि, सतकपटमय, अविस्वासकर गेह ।
मायामंजूखा बिकट, ज्ञानिहुँ जानि न जाहि ।
धरमनासि तियजन्त्र बिधि रचेउ बिसामृत काहि ।।

[९१५]

सखि सुखयत्यवकाशे प्राप्तः प्रेयान् यथा तथा न गृहे ।
वातादवारितादपि भवति गवाक्षानिलः शीतलः ।।

जो सुख पिय अवकास मिलि सो सुख घर नहिं आउ ।
खुली बायु ते अधिक सुख बातायन ते पाउ ।।

[९१६]

सन्दिग्धे परलोके जनापवादे च जगति बहुचित्रे ।
स्वाधीने पररमणे धन्यास्तारुण्यफलभाजः ।।

नहिं निसचित परलोक जब, जन अपवाद अमान ।
निज अधीन पर रमन जब धनि तारुन सुख जानि ।।

—:०:—

पान्थसंकेत

[६१७]

वीक्षितुं न क्षमा श्वश्रूः स्वामी दूरतरं गतः।
अहमेकाकिनी बाला तवेह वसतिः कुतः॥

स्वामी बस परदेस कहुँ घर अन्धो इक सास।
हौं बाला एकाकिनी पथिक इहाँ किमि बास॥

[६१८]

यदि गन्तासि दिगन्तं पथिक पतिस्तत्र सम्बोध्यः।
नयनश्रवणविहीना कथमुपचार्या मयैकया जननी॥

पथिक जाहु परदेस जदि पतिहिं कहेउ समुझाइ।
अन्धबधिर यहि सासु मोहिं इकले सेइ न जाइ॥

[६१९]

भोः पान्थ पुस्तकधर क्षणमत्र तिष्ठ वैद्योऽसि किं गणितशास्त्रविशारदोऽसि।
केनौषधेन मम पश्यतुभर्तुरम्बा किं वागमिष्यति पतिः सुचिरप्रवासी॥

पुस्तकधर कहु पथिक अहु बैद जोतिसी काउ।
अन्ध सासु किमि देखि, कब पिय परदेसी आउ॥

[६२०]

वाणिज्येन गतः स मे गृहपतिर्वार्ताऽपि न श्रूयते
प्रातस्तज्जननी प्रसूततनया जामातृगेहं गता।
बालाहं नवयौवना निशि कथं स्थातव्यमस्मद्गृहे
सायं सम्प्रति वर्तते पथिक हे स्थानान्तरं गम्यताम्॥

पिय परदेस गयो बनिज, समाचार नहिं पाइ।
सासु जवाँई घर गईं ननद आजु सुत जाइ।
हौं इकलो तरुनी निसा इहन बिताउब काउ।
साँझ अबहुँ हइ पथिक हे, आन थान कहुँ जाउ॥

[६२१]

शून्यं वेश्म चिरायितो गृहपति जताधुना शर्वरी
स्थातुं नोचितमत्र गच्छ निभृतं लोकैरनालक्षितः।
इत्थं लोलदृशा ह्यसावभिहितो दासीमुखेनाध्वगः
स्थित्वा किंचिदिव क्व यामि रजनी प्राप्तेत्युदीर्यस्थितः॥

अद्‌भुतरस

[९२९]

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु सन्ध्यामन्वास्य तत्क्षणात् ।
कक्षाक्षिप्तं निशान्ते स्वे बाली पौलस्त्य मत्यजत् ॥

सन्ध्या करि चहुँ सिन्धु मँह रवनहिं काँखि दबाय ।
आइ बहुरि निज भँवन मँह बालि दीन्हि निबुचाय ॥

— :०:—

हास्यरस

[९३०]

असारे खलु संसारे सारं श्वसुरपत्तनम् ।
हरिः क्षीरोदधौ शेते हरः शेते हिमालये ॥

यहि असार संसार मँह सार ससुर - पुर-बास ।
हरि छीरोदधि रमि रह्यौ हर सोवइं कैलास ॥

[९३१]

सदा क्रूरः सदा वक्रः सदा पूजामपेक्षते ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥

सदा क्रूर रह कुटिल रह, निज पूजा करवाइ ।
कन्यारासि टिक्यौ सदा दसवाँ गरह जवाँइ ॥

[९३२]

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा नचेद् गृहे ॥

स्वयं पंचमुख, तनय दुइ षड्‌मुख, गजमुख नाम ।
भूख दिगम्बरकुल मरत जदि अनपुन्न न वाम ॥

[९३३]

शृणु सखि कौतुकमेकं ग्राम्येण कुकामिना यदद्य कृतम् ।
सुरतसुखमीलिताक्षी मृतेति भीतेन मुक्तास्मि ॥

सखि सुनु गवँई रसिक जस कीन्ह अनाड़ि अभाग ।
रतिसुखमीलितनयन मोंहि मुई जानि तजि भाग ॥

[६३४]

अयं पटो मे पितुरंगभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तयौवनः ।
अलंकरिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान् मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते ।।

यहि पट सोह्यौ पितहिं अँग पुरब पितामह धारि ।
पूत-पोत मम धारिहहिं हौं प्रसून जिमि धारि ।।

[६३५]

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवलीकपोलेदन्तावलीविगलिता न च मे विषादः ।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः ।।

केस पलित, मुख वलित अरु दन्तावलि-विनिपात ।
नहिं दुख, किन्तु मृगीदृसनि बाबा पद पविपात ।।

[६३६]

कटी मुष्टिग्राह्या द्विपुरुषभुजग्राह्यमुदरं
स्तनौ घण्टालोलौ जघनमपि गन्तुंव्यवसितौ ।
स्मितं भेरीनादो मुखमपि च यत्तद् भयकरं
तथाप्येषा रण्डा परिभवति संतापयति च ।।

मूठी भरि अति छीन कटि चार हाथ भरि तोंद ।
थन लटकहि घंटासरिस जघन छुबन सोद्योग ।।
मुसुकानहु दुंदुभि बजै भीमभयावह तुंड ।
तबउ सताइ हरावई रॉड़ सबहिं नरमुंड ।।

[६३७]

अत्तुंवाञ्छतिवाहनं गणपते राखुंक्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी स गिरिजासिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ।।

गनपति वाहन मूसकहिं छुधित साँप चह खाइ ।
स्कन्दमोर साँपहिं चहइ, सिंह गजमुखहि धाइ ।।
गौरी गंगहिं डाहकरि, भाल-अगिनि डहि इन्दु ।
कुटुम कलह तें दुखी प्रभु संभु पियेउ बिस बिंदु ।।

:o:

शान्तरस

[९३८]

को देशः कानि मित्राणि कः कालः कौ व्ययागमौ ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ।।

देस कौन, को मीत निज, काल कौन, का आय ।
को व्यय, को हौं, सक्ति का कबहुँ न भूलिय भाय ।।

[९३९]

आशीमहि वयं भिक्षामाशा वासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ।।

रहइं दिगम्बर भीख लहि पेट भरे आराम ।
सोवइं भुइं निरदन्द नित धनिकन सों को काम ।।

[९४०]

पाषाणखण्डेऽष्वपि रत्नबुद्धिः कान्तेतिधीः शोणितमांसपिण्डे ।
पञ्चात्मकेवष्मंणि आत्मभावो जयत्यसौ काचन मोहलीला ।।

पाथर खंड रतन भयो, मांसपिंड पिय नारि ।
पंचभूतवपु आत्म भो अहो मोह बलधारि ।।

[९४१]

कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसः कुलं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।
अपक्वकुम्भे निहिता इवापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशम् ।।

कुटम सोच आकुलितकर गुन, कुल, सील, समस्त ।
काँचे घट महँ जल जथा होइं देह संग अस्त ।।

[९४२]

भूः पर्यङ्को निजभुजलता गेन्दुकः खं वितानं
दीपश्चन्दो विरतिवनिता लब्धयोगप्रमोदः ।
दिक्कन्यानां व्यजनपवनैर्वीज्यमानोऽनुकूलै
भिक्षुः शेते नृप इव सदा वीतरागो जितात्मा ।।

भूमि पलँग, उपधान भुज, सुंदर गगन वितान ।
दीप चन्द, बनिता बिरति, पाइ जोग सुखखान ।।
दिक् कन्या बीजहिं पवन, सोवइ नृप समबीर ।
आत्मजयी जितरिपु सदा परिब्राट् मुनि धीर ।।

[६४३]

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

भोग रोगभय, राजभय वित्त, दैन्यभय मान ।
कुल च्युतिभय, बल सत्रुभय, रूप जराभय जान ॥
गुन खलभय, जमराजभय देह, बादभय ज्ञान ।
भयदूसित जगवस्तु सब अभय बिराग बखान ॥

[६४४]

वेदस्याध्ययनं कृतं परिचितं शास्त्रं पुराणं स्मृतं
सर्वं व्यर्थमिदं पदं न कमलाकान्तस्य चेत् कीर्तितम् ।
उत्खातं सदृशीकृतं विरचितः सेकोऽम्भसाभूयसा
सर्वं निष्फलमालवालवलये क्षिप्तं न बीजं यदि ॥

बेद पढ़्यौ, पढ़ि सास्त्र सब, पढ़ि पुरान स्मृति धार ।
कमलापति पदकमल जदि गायों नहि सुखसार ॥
बृथा गवाँयो समय स्रम निसफल जनम अचेत ।
जोत्यौ, सींच्यौ, खादि दिय, बीज न डाल्यौ खेत ॥

—:o:—

अनित्यतानिरूपण

[६४५]

येषां निमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ ।
तादृशाः पुरुषा याता मादृशां गणनैव का ॥

झाँपत खोलत पलक जेहि होत प्रलय उतपत्ति ।
जब ऐसेहु सब चलि बसे गिनती मोसम कित्ति ॥

[६४६]

नन्दन्ति मन्दाः श्रियमाप्य नित्यं परं विषीदन्ति विपद्गृहीताः ।
विवेकदृष्ट्या चरतांनराणांश्रियोन किञ्चित् विपदो न किञ्चिद् ॥

बिपति पाइ रोवइ जगत् संपति लहि हरखान ।
जाके हियहि बिबेक तेहि संपति बिपति समान ॥

[६४७]

चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः सद्बान्धवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भृत्याः ।
गर्जन्ति दन्तिनिवहा स्तरलास्तुरङ्गाः सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ।।

मनमोहक जुवती, स्वजन, प्रिय सद्भृत्य अमन्द ।
दन्ति, तुरग, सब किछु नहीं जब दुइ दृग भइँ बन्द ।।

[६४८]

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः ।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ।।

अबहीं जे गावत रहे हँसत पढ़त बतियात ।
अबहीं ते न दिखात पुनि जमगति जानि न जात ।।

[६४९]

म्रियमाणं मृतं बन्धुं शोचन्ति परिदेविनः ।
आत्मानं नानुशोचन्ति कालेन कवलीकृतम् ।।

मरत, मरयो कहँ सोचहीं कलपहिं बन्धुहिं दीन ।
आपुन कँह नहिं सोचि केउ कालगृहीत मलीन ।।

[६५०]

अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे ।
इति मेमे कुर्वाणं कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ।।

असन, बन्धु, जाया, वसन, बहु मम सोचि प्रसन्न ।
नहिं सोचत कहुँ पुरुसअज कालबोग आसन्न ।।

—:०:—

पश्चात्ताप

[६५१]

न चाकारि कामारिकंसारिसेवा न वा स्वेष्टमाचेष्टितं हन्त किञ्चित् ।
मनः प्रेयसीरूपपङ्के निमग्नं किमन्ते कृतान्ते मयावेदनीयम् ।।

भजिन कामरिपु कंसरिपु, कियेउ न इच्छित काज ।
नारिरूप-कीचड़ फँस्यो मन का कहि जमराज ।।

[६५२]

चित्तभू-वित्तभू-मत्त-भूपालकोपासनावासनायासनानाभ्रमैः ।
साधुतासाधुता साधिता साधिता किं तया चिन्तया चिन्तयामः शिवम् ।।

मदन-वित्त-भू-मत्त नृप सेइ स्रान्त अरु भ्रान्त ।
तजि साधुता लियो व्यथा, अब सिव भजि हों सान्त ।।

[९५३]

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः।।

अनवद्या बिद्या न गहि धन न कमायो भूरि।
मातु पितहिं स्रद्धासहित सेइ न जीबन मूरि।।
सपनेहुँ मृगनैनी जुवति नहिं आलिंगेउ कोइ।
अन्य-पिंड-लोलुप सदा जनम महारघ खोइ।।

विचार

[९५४]

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतंमुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्न मजन्मनि।।

मूढ़ डरसि कस मीचु सन डरे न छोड़हिं काल।
नहिं अजात कहँ मारई जनममुक्ति चलु चाल।।

[९५५]

केचिद् वदन्ति धनहीनजनोजघन्यः केचिद् वदन्ति गुणहीनजनोजघन्यः।
व्यासो वदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः।।

अधम सो जो धनहीन जन, अधम सो जो गुनहीन।
बेदबिज्ञ मुनि ब्यास कह अधम जो नहिं हरिलीन।।

[९५६]

नाथे श्रीपुरुषोत्तमे त्रिजगतामेकाधिपेचेतसा
सेव्ये स्वस्य पदस्य दातरि सुरे नारायणे तिष्ठति।
यं कंचित् पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदं
सेवायै मृगयामहे नरमहो मूढा वराका वयम्।।

सिरि पुरुसोत्तम नाथ प्रभु अछत सकल फलदानि।
स्वल्पधनी नर छुद्र कहँ सेवन चाहुँ अजानि।।

[९५७]

किमाराध्यं सदा? पुण्यं। कश्चसेव्यः? सदागमः।
कोध्येयो? भगवान् विष्णुः किं काम्यं? परमं पदम्।।

को अराध्य नित? पुन्य। को सेब्य? सास्त्र सुभ्र जान।
ध्यानजोग्य को? हरि। कौन काम्य? परम पद मान।।

—:o:—

पञ्चम आनन

देवसूक्ति खण्ड

गणेश

[९५८]

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम् ।
अनेकदं तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥

अगजाननीरज रबिहिं बन्दि गजानन देव ।
एकदन्त बहुदानि प्रभु जनम सकल फल लेव ॥

[९५९]

विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः ।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥

बिघन तिमिर कंह तरनि जो बिघन बिपिन कहँ ज्वाल ।
बिघन नाग कंह गरुड पुनि बिघन करीन्द्रहिं ब्याल ॥
बिघन महीधर हेत पबि, बिघन जलधि बडवागि ।
चंड पवन बिघनाम्बुदहिं बिघनेस्सर पद लागि ॥

[९६०]

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदविसधिया शावकं शीतभानो
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषातप्यमानः ।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छुर्भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा संबोध्यनीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः ॥

तात गोद चढ़ि बिस समुझि इन्दुकला चह खींच ।
भाल अगिनकर करप्रखर जरि पुनि डरप्यो बीच ॥
गंगाजल पीवन चहइ फनिपति फूँक डेराइ ।
दुरित हरइ सिसु गनपती मातु सप्रेम बुझाइ ॥

—:०:—

शिव

[६६१]

पाणिग्रहे पर्वतराजपुत्र्याः पादाम्बुजं पाणिसरोरुहाभ्याम् ।
अश्मानमारोपयतः स्मरारेर्मन्दस्मितं मङ्गलमातनोतु ॥

उमापादपंकज पकड़ि निज करकमल सँभार ।
आरोपत पाखान हँसि सिव नासइँ दुखभार ॥

[६६२]

क्व तिष्ठतस्ते पितरौ ममेवेत्यपर्णयोक्ते परिहासपूर्वम् ।
क्व वा ममेव श्वशुरौ तवेति तामीरयन् सस्मितमीश्वरोऽव्यात् ॥

मम सम मातु पिता कहाँ तव गौरी हँसि लीन्ह ।
सासु ससुर मम सम कहाँ तव सिव उत्तर दीन्ह ॥

[६६३]

स पातु वो यस्य जटाकलापे स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः ।
नीलोत्पलानामिवनालपुंजे निद्रायमाणः शरदीव हंसः ॥

रच्छक सो जेहि जटाबिच हारगौर ससि सोह ।
नीलोत्पलमझि सोइ जिमि सरदहंस मन मोह ॥

[६६४]

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं
केकामेकां कुरु पशुपतिर्नैव दृश्येविषाणे ।
स्थाणुर्मुग्धे न वदति तरुर्जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातुवश्चन्द्रचूडः ॥

को तुम ? सूली । बैद लखु । नीलकंठ हौं प्रान ।
केका एक करहु तब ? पसुपति । कहाँ बिखान ?
स्थाणु प्रिये । तरु बोल नहि ? सिवा प्रानपति जान ।
बिपिन जाहु । हत बचन सिव भगतबछल भगवान ॥

[६६५]

आसीने वृष्णि तूष्णीं व्यसनिनि शशिनि व्योमकृष्णे सतृष्णे
दैत्येन्द्रे जातनिद्रे द्रवति मघवति क्लान्तकान्तौ कृतान्ते ।
अब्रह्मण्यं ब्रुवाणे कमलपुटकुटीश्रोत्रिये शान्त्युपाये
पायाद्वः कालकूटं झटिति कवलयँल्लीलया नीलकण्ठः ॥

मौन बैठि रबि ससि दुखी बिस्नु स्पृहा अधिकान।
दैतराज मूँदेउ नयन मघवा दूर भगान।।
हा अनरथ कहि कमलभू मलिनकान्ति जमराज।
गटकि कालकूटहिं हरयो जगभय हर सुरराज।।

[६६६]

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किंनु नामैतदस्या
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतंकस्य हेतोः।
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु
र्देव्या निह्नोतु मिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्‌विभोर्वः।।

कौन चढ़ी सिर ? ससिकला। इहइ नाम यहि केर ?
हाँ, जानत कस बिसरिगो जो पूछत हौ फेर ?
नारी पूँछऊँ, ससि नहीं। तब कहु बिजया बोल।
गंग छिपावत उमहिं सन प्रभु सठता अघ घोल।।

[६६७]

दृष्टः सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात् संभ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणमृषिभिर्विष्णुना सस्मितेन।
आदायास्त्रं सगर्वैरुपशमितवधूसंभ्रमैर्दैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान्।।

चितवत देवी प्रेमपगि, असुरनारि भयभीत।
रिसि प्रसान्त करुनासहित सस्मित हरि सप्रीत।।
सस्त्र थामि दानव फड़कि, देव अनन्दबिभोर।
मयपुर दाह करत प्रभु धूर्जटि दुख हर मोर।।

[६६८]

भीतिर्नैव भुजङ्गपुङ्गवविषात्प्रीतिर्न चन्द्रामृता
न्नोद्वेगश्चितिभस्मनो न च सुखं गौरीस्तनालिङ्गनात्।
नाशौचं नृकपालदामलुलनाच्छौचं न गङ्गाजलाद्
आत्मारामतयाहिताहितसमः स्वस्थोहरः पातुनः।।

पन्नग बिससो भय नहीं नहिं ससि अमरित नेह।
चिताभसम उदबेग नहिं नहिं सुख गौरी देह।।
मुण्ड माल नहिं असुचि तिमि सुचि न सुरधुनीवारि।
प्रिय अप्रिय महँ एक सम समरथ प्रभु त्रिपुरारि।।

पार्वती

[९६९]

पार्वतीमोषधीमेकामपर्णां मृगयामहे ।
शूली हलाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥

एक अपरना पार्वती ओखधि खोजउँ आज ।
जेहि लहि सूली बिस पियो मृत्युंजय होइ राज ॥

[९७०]

श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण पञ्चानेन सहसा चतुराननाय ।
शार्दूलचर्मभुजगाभरणं सभस्म दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥

सुनेउ खडानन जनम प्रभु पञ्चानन हरखाइ ।
भसम दियो चतुराननहिं सुनि गिरिजा मुसुकाइ ॥

[९७१]

रामाद् याचयमेदिनीं धनपते बींजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान् महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव ।
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातुवः ॥

रामहि माँगहु भूमि किछु बीज कुबेरहु पाल ।
बल सों हल, जम सों महिस बृस तव सूलहु फाल ॥
बृसपालन करि स्कन्द, हौं अन्नपान कर जोग ।
भलि न भीख करु कृसि उमा बचन हरइ भवरोग ॥

[९७२]

हे हेरम्ब, किमम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभूः
किं ते स्कन्द विचेष्टितं मम पुरा संख्याकृता चक्षुषाम् ।
नैतत्तेऽप्युचितं गजास्य चरितं नासां मिमीतेऽम्ब मे
तावेवं सहसा विलोक्य हसितव्यग्राशिवापातुवः ॥

रोवहु कत हेरंब ? मम स्कन्द उमेठहि कान ।
उचित कि स्कन्द ? गिनत मम गजमुख नयन-निसान ॥
गनप उचित यहि ! अम्ब मम नासा नापइ भाइ ।
हंसी जो फूटी सिवा सुनि हरइ सों मन कलुसाइ ॥

[९७३]

मातस्तातजटासु किं सुरसरित् किं शेखरे चन्द्रमाः
किं भाले, हुतभुग् लुठत्युरसि किं, नागाधिपः किं कटौ ?
कृत्तिः किं जघनद्वयान्तर्गतं यद्दीर्घमालम्बते
श्रुत्वा पुत्रवचोऽम्बिकास्मितमुखी लज्जावती पातुवः ॥

तात जटा बिच अंब को ? गंगा। सिर पँह ? चन्द।
को ललाटबिच ? अगिन। को लोटत उर ! उरगेन्द ॥
कटि पर ? कृत्ती। जघन बिच लम्बो लटकत कौन ?
पुत्र-प्रस्न सुनि स्मितमुखी गौरी धारयौ मौन ॥

[९७४]

भिक्षुः क्वास्ति, बलेर्मखे, पशुपतिः किं नास्त्यसौ गोकुले
मुग्धे पन्नगभूषणः, सखि सदा शेते च तस्योपरि।
आर्ये मुञ्च विषादमाशु, कमले नाहं प्रकृत्याचला
चेत्थं वै गिरिजासमुद्रसुतयोः संभाषणं पातुवः ॥

भिच्छु कहाँ ? बलिमख लखहु। पसुपति ? गोकुल जाहु।
पन्नगभूसन सखि कहाँ ? सोवत तेहि पर नाहु ॥
छोंड़ बिसादहि। सखि रमा चपला नहिं हौं जान।
लच्छि-सिवा संवाद अस भगतहृदय करि त्रान ॥

[९७५]

हे गङ्गाधरपत्नि चक्रिवधु किं कुत्रास्त्यसौनर्तको
वृन्दारण्यभुवि क्वसर्पकुतुकी स्यात् कालियस्य ह्रदे।
भिक्षुः कुत्र गतोऽस्ति यज्ञसदने क्वासौ विषादी
बकीक्रोडे स्यादिति पद्मजागिरिजयोर्वागिभङ्ग्यःपान्तुवः ॥

गंगाधरबहु कहँ गयेउ नर्तक नाहिं दिखात।
चक्रिबहू देखउ कतहुँ बृन्दावन मिलि जात ॥
कहाँ सँपेरा छिपि रहेउ, कालियदह महँ हेरु।
नाहिं भिखारी दिखै, बलि-जज्ञि भूमि करु फेरु ॥
कहाँ बिसादी पूतनादूध पियत मिलि जाइ।
बचनभंगि कमलासिवाकर करि भगत सहाइ ॥

—:०:—

श्रीकृष्ण

[६७६]

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरेभजन्तु भवभीताः ।
अहमिहनन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

कोउ स्रुति कोउ स्मृति कोउ भजइ भारत भवभय भागि ।
जेहि आँगन परब्रह्म हों तेहि नन्दहिं अनुरागि ॥

[६७७]

स्तन्यं पिबन्तं जननीमुखाब्जं विलोक्य मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम् ।
स्पृशन्तमन्यस्तनमंगुलीभिर्वन्दे यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम् ॥

पियत जसोदास्तन लखत मन्दस्मित मुखचन्द ।
छुवत अँगुरियन स्तन अपर बन्दउँ सिसु नँदनन्द ॥

[६७८]

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा ममाङ्घ्रिराजीवरसं पिबन्ति किम् ।
इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी स गोपबालः श्रियमातनोतु नः ॥

तजि अमरित मम पदपदुमरस किमु मुनिहिं लुभाइ ।
चरनअंगूठो पियत निज बालमुकुन्द सहाइ ॥

[६७९]

श्रृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेनाङ्गणे मया दृष्टम् ।
गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः ॥

सुनहु सखी कौतुक दिख्यौ नन्दअजिर अपरूप ।
ब्रह्म जो कहि बेदान्त बिच नाचत तहँ सिसुरूप ॥

[६८०]

अतसीकुसुमोपमेयकान्तिर्यमुनातीरकदम्बमध्यवर्ती ।
नवगोपवधूविनोदशाली वनमाली वितनोतु मंगलं नः ॥

अतसीकुसुम समान द्रुति जमुनकदम-तरु-छाँव ।
गोपबधूटी रमत हरि जगमंगल कहँ ठाँव ॥

[६८१]

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम् ।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम् ॥

पुंज जो गोपी प्रेम को मूर्त जदुनकर भागि ।
सब स्रुति सम्पति एक जो ब्रह्म स्याम सो लागि ॥

[६८२]

कृष्णो गोरसचौर्यमम्ब कुरुते, किं कृष्ण, मातः
सुरापानं न प्रकरोमि, राम किमिदं, नाहं परस्त्रीरतः।
किं गोविन्द वदत्यसौ हलधरो, मिथ्येति तां व्याहरन्
गोपीगोपकदम्बकं विहसयन् मुग्धो मुकुन्दोऽवतु ॥

अम्ब चुरावत कृस्न दधि, कृस्न सत्य तुम चोर ?
मातु सुरा हौं नहिं पियौं, राम पाप यहि घोर ॥
पर-दारा-लम्पट न हौं, स्याम कहत का राम।
अम्ब झूठ दाऊ कहत सुनि सब हँसि लखि स्याम ॥

[६८३]

वासांसि व्रजचारिवारिजदृशांहृत्वाहठादुच्चकै
र्यः प्राग्भूरुहमारुरोह सपुनर्वस्त्राणिविस्तारयन्।
व्रीडाभारमपाचकार सहसा पाञ्चालजायाः स्वयं
को जनाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी ॥
ब्रजगोपिन कँह चोर हरि लज्जित किय तिन्ह जोइ।
कृस्नाचीर बढ़ाइ हरि लाज बचायो सोइ ॥

[६८४]

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥
यहि रिन बाढ़्यौ कबहुँ मम मनते दूर न होइ।
दूरहुँ रहि गोबिन्द कहि जो कृस्ना तब रोइ ॥

दशावतार

[६८५]

यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुधाधीशः पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो
ध्याने विश्वमसावधार्मिकुलं कस्मैचिदस्मैनमः ॥
जलधि समायो सल्क जेहि जगमंडल जेहि पीठ।
दाढ़ बीच धरनी तथा नखबिच दानव दीठ ॥
पदबिच धरनी-गगन दोउ क्रोध बीच राजन्य।
सर राबन, कर प्रलँब, जग ध्यान, कृपान जघन्य ॥

—:०:—

शब्दार्थ-सूची

(अ)

अभिजन = कुल, वंश
अनंग = काम
अवाँस = प्रारम्भ करना
अस्थि = हड्डी
अजामरजनीधूलि = (अजामार्जनीधूलि) बकरी के पैरों से तथा झाड़ बुहारने से उठी धूलि अशुभ मानी जाती है।
अवज्ञा = अपमान
अखर्व = बड़ा
अहि = सर्प
अनइष्ट = अप्रिय, अहित
अंसुक = वस्त्र
अँगवइ = अंगीकार करती है, सहती है।
अजातहि = न पैदा हुए को
अमन्द = तीव्रता से, बुद्धिमान्
अवदात = विशुद्ध, धवल
अनसूया = दूसरे का दोष न देखना
अपराह्णिक = दोपहर के बाद का
अवसाद = क्लेश
अविनासि = परमेश्वर
अनुमानिय = प्रसन्न करना चाहिए
अपवाद = निन्दा
अरक = मंदार
अम्बर = आकाश, वस्त्र
अनसाइ = बुरामानना
अपस्मार = मिरगी
अटवी = सघनवन
अनपुन्न = अन्नपूर्णा
अलीक = झूठ
अतसी = अलसी
अम्बुद = बादल
असेस = पूरा

(आ)

आख्या = नाम
आसन्न = समीप
आहत = चोट खाया हुआ
आलबाल = थाल्हा
आसा = (आशा) दिशा

(इ)

इज्या = यज्ञ

(ई)

ईसान = शिव

(उ)

उपानह = पनही
उपनय = उपनयन
उडुगन = तारागण
उदरोपस्थ = पेट एवं लिंगेन्द्रिय
उदक = जल
उरमिल = लहरों वाला
उसना = (उशना) शुक्राचार्य
उपधान = तकिया

(ओ)

ओतु = बिडाल, बिल्ली

(औ)

और्व = बडवाग्नि

(क)

कविन्द = कवीन्द

कमलाकर = कमल सरोवर

कपित्थ = कैथा

कसा = कोडा

करीस = गजेन्द्र

करिया = कालानाग

कर = हाथ, किरण

कहकूति = उक्ति, लोकोक्ति

कर्नि = कोन वाला बाण

करका = पत्थर या उपलवृष्टि

करेणु = हथिनी

करभ = ऊँट का बच्चा

कंडू = खुजली

कमलभू = ब्रह्मा

कान्तार = जंगल

काकोल = डोमरा कौवा

किंसुक = पलाश

कुच = स्तन

कुक्कुट = मुर्गा

कुणप = शव

कुचैल = बुराबस्त्र

कुम्भज = अगस्त्य

कुलटा = दुश्चरित्र स्त्री

कुरम = (कूर्म) कछुआ

कृस्ना = द्रौपदी

कृत्या = महामारी की देवी

कृत = कृत्रिम

कृत्ती = चमड़ा

केसर = पशु की गर्दन के बाल

केहरि = (केसरी) सिंह

केका = मोर की बोली

(ख)

खद्योत = जुगनू

खल = दुष्ट, खली

(ग)

गजमुक्तकपित्थ = हाथी कैथे को सीधे निगल जाता है फिर उसके भीतर का गूदा आदि सब पचाकर पूरा कैथा ज्यों का त्यों टट्टी के रास्ते निकाल देता है।

गंगदह = गंगा का कुंड

गयंद = गजराज

गात = शरीर

गाह = कठिनाई, थाह

गुह्यता = छिपाने योग्यता

गुणवान् = गुणी, डोरेवाला

गुनवद् = गुणी, रस्सीवाला

गोइ = छिपाकर

गोरस = दूध घी आदि, भूसम्पदा, इन्द्रिय स्वाद, वाणी की सुषमा।

गोपीजात = गोपी से उत्पन्न

ग्राही = ग्रहण करने वाला

(घ)

घटजोनी = अगस्त्य

(च)

चक्रवाक = चकवापक्षी

चित्र = आश्चर्य

चिबुक = ठुड्डी

(छ)

छनिक = विद्युत्

छिप्रकरि = कार्य शीघ्र निपटाने वाले

(ज)

जटिल = जटा धारण किये, उलझा हुआ
जनि = पैदा करके
जठर = उदर पेट
जरठा = बूढ़ी
जति = साधु, संन्यासी
जय जीव = जय हो, जियो
जनि-मीचु = जन्म-मरण
जल्प = कथन
जनक = पिता
जलजात = कमल
जगिदान = यज्ञदान
जाया = पत्नी
जातितुरग = उत्तमजाति का घोड़ा
जाम = प्रहर, प्याला
जार = यार, उपपति
जीवन = जल, जिन्दगी
जुद्धवृत्त = युद्ध का समाचार
जूथप = झुंड का सरदार

(झ)

झंझा = आँधीपानी
झमेलि = परेशान करना

(त)

तरुकलप = कल्पवृक्ष
तच्छक = तक्षकसर्प
तनुजात = सन्तान
तरी = नौका
तमगहन = राहु द्वारा ग्रसा जाना
तपन = सूर्य
तस्कर = चोर
तक्र = मट्ठा
ताँइँ = समान
तुंड = मुख
तूरि = शीघ्र
त्वचा = चर्म, चमड़ा
त्रपा = लज्जा
त्रान = रक्षा
त्रिक = तीन प्रकार का
त्र्यम्बकहि = शिव को

(थ)

थविरहि = बूढ़े को

(द)

दम = आत्म संयम
दरि = (दरी) गुफा
दन्तिन = हाथी
दार = पत्नी
दायाद = पुत्र, बान्धव, उत्तराधिकारी
दारु = लकड़ी
दान = गजमदजल, वितरण
दाव = वन की आग
दाख = अँगूर
दारेउ = फाड़ डाला
दिग्वसन = नंगा
दिविर = लिपिक, कायस्थ
दीपक खटियाछाँव = दीपक के प्रकाश में चारपाई की परछाइँ अशुभ मानी जाती है।
दुराउ = छिपाना, कपट
दुहिता = पुत्री
दुष्कृत = पाप
दुरित = पाप
दृप्त = अभिमानी
दृगहीन = अन्धा
दोसाकर = चन्द्रमा, दोषों की खान

दौर = द्वार
द्राक्षा = अंगूर
द्रुम = वृक्ष

(ध)

धीवर = मल्लाह
धुत्ति = धूर्तता

(न)

नक्र = घड़ियाल
नगपति = गिरिराज
नड = नरकुल
नालीक = एक प्रकार का बाण
निकृति = प्रायश्चित्त
निरनालक = कमल नाल से रहित
निरबास = बिना वस्त्र का
निरबान = मोक्ष, बुझना
निसीथ = आधी रात
नीवि = कमर में धोती की गाँठ

(प)

पंकिल = कीचड़ वाला
पयोधर = स्तन, बादल
पयोधरभोग = स्तनविस्तार
पलित = बालों की सफेदी
परेंगित = अन्य के संकेत
पत्तन = नगर
पल्ली = छोटे घरों की बस्ती
परिमल = सुगन्ध
पर्जंक = पलँग
पबिपात = बज्रपात
पंचबान = कामदेव
पादाति = पैदल
परायन = अभ्यास, आवृत्ति
पास = पाश, बन्धन
पाप = पापकर्म, पापी
परावत = कबूतर
पाटल = गुलाबी
पिसुन = दुर्जन
पीवर = मोटा
पिच्छल = छटनवाला
पुरीस = बिष्ठा
पूरबाह्न = दोपहर के पहले
पोच = थोड़ा, छोटा
पोत = बालक, जहाज
प्रतीति = विश्वास
प्रसस्त = प्रशंसनीय
प्रतिमूर्ति = सरूप
प्रासाद = प्रसन्नता, निर्मलता
प्रासाद = महल

(फ)

फनि = साँप
फेरु = सियार

(ब)

बदरी = बेर
बहुलपाख = कृष्णपक्ष
बल्लरी = लता
बनज = कमल
बसति = निवास
बनिज = व्यापार
बन्हि = आग
बर्ही = मोर
बाहित = सवारी ढोना
बाडव = घोड़ा, बडवाग्नि
बायस = कौवा
बालिसता = मूर्खता
बिधि = ब्रह्मा, दैव, भाग्य

बिडाल = बिल्ली
बिकल्प = हिचकिचाहट
बिपन्न = विपत्तिग्रस्त
बिसाद = खेद, दुःख, विष खाने वाला
बिहित = विधिसम्मत
बिचिमाल = लहरों की परम्परा
बिधु = चन्द्रमा
बिस = कमलनाल, विष
बिद्रुम = मूँगा
बिट = छैला, कामुकानुचर
बीचि = लहर
बींदि = बीनकर
बीथी = गली
बीजहिं = पंखा डुलाती हैं
बीग = भेंड़िया
बृत्ति = जीविका, आचरण
बेध्य = लक्ष्य
बेबाक = निश्शेष
बैतसी = बेंत की जैसी, झुकने वाली
बोइ = दुर्गन्ध
ब्यसन = लत
ब्यपदेस = नाम
ब्याहार = बोलना, वचन
ब्याल = सर्प, व्याघ्र
ब्रीडा = लज्जा

(भ)

भव = शिव
भब्य = भविष्य
भगांकी = भगच्चिह्न वाला
भाति = शोभित होता है
भास = एक पक्षी
भीचु = शोक
भुजंग = साँप
भूसि = शोभित होता है
भूति = भस्म, वैभव
भूस = अलंकार

(म)

मरकट = वानर
मकरालय = समुद्र
महारघ = कीमती
मकरन्द = पुष्परस
मधुकर = भ्रमर
महिस = भैंसा
मलकोस = दोषों का खजाना
महिसी = पटरानी, भैंस
महीरुह = वृक्ष
मनसिज = कामदेव
मघवा = इन्द्र
मख = यज्ञ
मा = लक्ष्मी
मार = कामदेव
मित्र = सूर्य, दोस्त
मीचु = मृत्यु
मीन = मछली
मुररिपुपानि = विष्णु के हाथ
मृगीस = मृग, हरिण
मृगमद = कस्तूरी
मेध्य = बलि

(य)

यादृच्छिक = स्वेच्छा से, योंही
यान = सवारी, वाहन

(र)

रजनी = रात्रि
रसाल = आम्र

रहसभेद = रहस्य खोल देना
रन्ध्र = छेद
रासभी = गर्दभी
राजपथ = सड़क
राउ = शब्द
रूख = वृक्ष
रेवा = नर्मदा

(ल)

लघु = छोटा, शीघ्र
लाला = लार

(व)

वपु — शरीर
वदान = दानी, उदार
वलित = झुर्रियों वाला
वा: = जल
वाम = स्त्री
वारिद = बादल
वारि = जल
विकृताच्छ = कुरूप आँखों वाला

(स)

सतसंधता = सत्यप्रतिज्ञ होना
सगद = रोगसहित, गदासहित
सदंड = डंडा लिये हुए, यमदंडधारण किये हुए।
सकृत् = एक बार
सव = लाश
सम्बूक = सीपी
सस = खरगोश
सटा = जटा
सगुन = गुनी, रस्सी सहित
साखामृग = वानर
साम = शान्ति, समझाना
सावक = बच्चा, शिशु
सलूक = कमलकन्द
संभ्रम = हड़बड़ी
सार्दूल = सिंह
सिद्धिकदम्ब = सिद्धि समूह
सिरि = श्री
सिखि = अग्नि मोर
सिरिस = शिरीष पुष्प
सुमन = फूल देवता
सुबक्र = टेढ़ा, झुका हुआ
सुचिता = पवित्रता, ईमानदारी
सुविचच्छन = विद्वान्
सुनासीर = इन्द्र
सुदती = सुन्दर दाँतों वाली
सुरागि = पता
सुरधुनी = गंगा
सूची = सुई
सेखर = शिरका अलंकार
सोणित = खून
सोदोग = यत्नशील
स्तेय = चोरी
स्मर = कामदेव
स्यामा = युवती, श्याम वर्ण वाली
स्येन = बाज
स्लोक = पद्य, यश
स्रुत = वेद, शास्त्र
स्रवनरन्ध्र = कान का मार्ग
स्वापदहि = हिंस्र पशुओं को
स्वेद = पसीना
स्वस्ति = कल्याण

(ह)

हयमेधी = अश्वमेध करने वाला
हेमकार = सुनार
हेय = त्याज्य
हेला = खेल, उपेक्षा
ह्री = लज्जा
हेरंब = गणेश

श्लोकानुक्रमणी

(र)

(ल)

(व)

आत्मनिवेदनम्

श्रीमद् भानुप्रतापाख्यात् पितृव्यचरणाद् गुरोः ।
श्रद्धया परभक्त्या च श्रुत्वा व्याकरणं, पुनः ॥१

श्रीमद्रामकिशोराख्यात् पितुः शान्तशिवाकृतेः ।
लब्ध्वा काव्यरुचिं पुण्यां कृतसंस्कृतगीःश्रमः ॥२

श्रीजनार्दनसंज्ञस्य शर्मणो मतिशालिनः ।
गुरोश्चरणयोः सम्यङ्मातृभाषामधीतवान् ॥३

देवप्रभाकराख्यस्य श्रीमतः प्रतिभावतः ।
सख्युः प्रेरणया काव्य-क्रियां प्रति मतिं व्यधात् ॥४

आचार्यशेखरात् प्राप्य श्रीमिट्ठूलालसंज्ञकात् ।
साहित्यशास्त्रसिद्धान्तान् कृतकृत्योऽभवच्चयः ॥५

रस - सिन्धु - नभो - नेत्र - शुभविक्रमवत्सरे ।
पूर्णिमायां तिथौ मार्गशीर्षे भौमे शुभेऽहनि ॥६

श्रीचण्डिकाप्रसादस्य लोलार्कोपाख्यशर्मणः ।
सूक्तिगङ्गाधरस्तस्य पञ्चाननसुशोभितः ॥७

सतामाराधनार्थं यो मातृवाचा स्वनूदितः ।
यज्ञः सारस्वतः सोऽयं पूर्णोऽभूत्सुखदः सताम् ॥८